नौकरी सभी में निश्चित बीस प्रतिशत सुरक्षित रखने की बात कही है। शिक्षा-संस्थाओं में अनुदान अङ्क (ग्रेस-मार्क) देने की बात भी की है।

जब चौधरी साहब उत्तर प्रदेश में माल-मंत्री थे, तो उन्होंने शिकमी जोतने वाले या अनधिकृत कब्जा करने वालों को, जिनके अधिकार में भूमिधरों के खेत थे, उन सबके लिए एक विधेयक प्रस्तुत कर सीरदारी का हक दे दिया, इससे हजारों हरिजन भूमि के मालिक हो गये। आज कुछ लोग अपने संकुचित स्वार्थ की पूर्त्ति के लिए चौधरी साहब को 'हरिजन-विरोधी' बताने का दुष्प्रयास करते हैं और चाहते हैं कि हरिजन उनका साथ छोड़ दें। किन्तु जब सच्ची बातें हरिजनों के सम्मुख पहुचेगी, तो उन नकली तथाकथित हरिजन नेताओं का चेहरा बेनकाब हो जायेगा। यह बिलकुल सच है कि आज जो हरिजनों का नेता बनने का प्रयत्न करते हैं, उन्होंने तीस साल के अपने शासन में हरिजनों के लिए कुछ खास नहीं किया है। एक हरिजन माँ की कोख से पैदा होने वाला ही हरिजनों का दुश्मन हो सकता है और अपने गलत कार्यों से उनके नुकसान का कारण बन सकता है और एक अन्य माँ की कोख से पैदा होने वाला हरिजनों का सबसे बड़ा सहायक और शुभचिन्तक हो सकता है।

गाँधी जी ने हरिजनों की जितनी सेवा की, उनको जितना ऊपर उठाया, उतना किसी हरिजन या हरिजन नेता ने नहीं। डाक्टर लोहिया ने इस सिद्धान्त का बड़े व्यापक पैमाने पर प्रचार किया कि सभी मनुष्य एक जाति के हैं। हरिजनों के लिए 'मन्दिर प्रवेश आन्दोलन' चला कर उनमें आत्म सम्मान की भावना भरी। डा० अम्बेदकर भारतीय सविधान के रचनाकारों में थे। उनसे सामीप्य स्थापित करके एक जन-आन्दोलन का रूप देने के लिए बहुत दूर तक डा० लोहिया ने डाक्टर अम्बेदकर को अपने आदर्शों पर चलने के लिये राजी कर लिया था। हरिजनों की दयनीय स्थिति में तत्काल सुधार हो; भोजन, वस्त्र, मकान दवा और पढ़ाई की उनकी पूरी व्यवस्था हो; ऊँच-नीच का भेदभाव मिटे; सब मनुष्य बराबर हों। चौधरी साहब उनके इन स्वप्नों को साकार करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। किसी हरिजन की अपेक्षा हरिजन का हित चौधरी साहब ज्यादा करते हैं।

आज की गन्दी स्वार्थ-नीति में चौधरी साहब को मुसलमान-विरोधी भी सिद्ध करने का दुष्प्रयास किया जाता है। जबकि चौधरी साहब ने अपने मुख्यमन्त्रित्वकाल में उत्तर प्रदेश में मुसलमानों के हितों की बराबर रक्षा की है। उन्होंने सरकारी गजट तक का प्रकाशन उर्दू में कराया। डा० फरीदी, जो मुसलिम मजलिस के सदर थे, उनके साथ चुनाव का समझौता करके उत्तर प्रदेश में सन् १९७२ में काँग्रेस को मात दी थी और भारतीय क्रान्तिदल, सोशलिस्ट पार्टी तथा मुस्लिम मजलिस का एक संयुक्त मंच बनाकर विरोधी दलों को एक दल बनाने का मार्ग प्रशस्त किया था। तभी से चौधरी साहब के प्रयत्न से विरोधी दलों को मिलाकर काँग्रेस का एक राष्ट्रीय विकल्प बनाने की कल्पना तीव्र गति से आगे बढ़ने लगी थी। छोटी-छोटी अनेक पार्टियाँ मिलाकर भारतीय लोकदल की स्थापना सन् १९७४ में हुई। उनका सही प्रयत्न आगे चलकर आपात्-काल में जनता पार्टी के जन्म का कारण बना। सही दृष्टि-कोण से देखा जाये, तो जनता पार्टी के गठन का सर्वाधिक श्रेय चौधरी चरणसिंह को ही जाता है।

चौधरी साहब ने सर्वदा मर्यादा की रक्षा की है। जनता पार्टी के नेता के चयन का प्रश्न आया, तो अस्पताल से चौधरी साहब ने श्री मोरार जी भाई का नाम नेता-पद के लिए प्रस्तावित किया। चौधरी साहब का वह पत्र अस्पताल से मैंने आचार्य कृपालानी जी को तथा लोकनायक जयप्रकाश जी को दिखाया। चौधरी साहब की इच्छा पर कृपालानीजी ने जयप्रकाश जी की सलाह मानकर नेता पद के लिए देसाई जी का नाम प्रस्तावित किया और मोरार जी निर्विरोध नेता चुने गये। तभी से कुछ अपने को हरिजन कहने वाले ससद-सदस्य चौधरी साहब के प्रति विकारग्रस्त होकर मौके बे-मौके सारा इतिहास, सामाजिक आर्थिक-विकास का सारा क्रम भूलकर हरिजनों से सम्बन्धित हर काम के लिए मनगढन्त ढंग से चौधरी साहब पर निराधार आरोप लगाते रहते हैं। यह बात जग-जाहिर है कि हम लोगों को इसके पूर्व संसद में या विधान-मंडल में कभी भी एक राज्य में घटित घटनाओं को राज्य-विषय कहकर संसद में नहीं उठाने दिया गया था; मगर आज स्थिति भिन्न है, फिर भी चौधरी साहब हरिजनों के प्रति अपनी उदारता में कभी कमी नहीं आने देते।

उर्दू क्योंकर पैदा हुई ?

□ मौलाना सैयदहुसेन शिबली नदवी

हिन्दोस्तान की अदबी तारीख का जबसे हमको हाल मालूम है, यह नजर आता है कि इस मुल्क में कभी एक बोली नहीं बोली गई। दरहकीकत यह मुल्क एक बर्र-आजम है जिसमें हर जमानः में मुख्तलिफ कौमें और मुख्तलिफ नसलें—जो मुख्तलिफ बोलियाँ बोलती थीं—आबाद थीं, आबाद हैं और आबाद रहेंगी। दुनिया की जबानों की तीन मशहूर असलें हैं—आरयाई, तूरानी और सामी। तीनों यहाँ दोशबदोश मिलीजुली मिलती हैं। द्रावड़ी जबानों की अस्लियत तूरानी बताई जाती है। सूबों की दूसरी जबानें आरयाई हैं और अरबी की शुमूलियत सामी असर का नतीजा है। चन्द मशहूर राजाओं के जमानों को छोड़कर जो मुल्क के अक्सर हिस्से पर हुक्मराँ रहे—हिन्दोस्तान का अक्सर यही हाल रहा कि उसके मुख्तलिफ सूबे मुस्तकिल रियासतों की सूरत में रहे। इन सूबों की वसअत राजा की कुव्वत और फतूहात के दायरः की कमी-बेशी के लिहाज से घटती-बढ़ती रही। हर रियासत की जबान उसके सूबः की मुकामी जबान थी और वही गोया सरकारी जबान की हैसियत रखती थी। अब जिस कदर इस रियासत का दायरा होता उसी हद तक उस जबान का जोगराफी दायरा कभी घट जाता और कभी बढ़ जाता। मसलन देखिए कि अवध की बोली, ब्रज की भाषा, मगध की जबान, अतराफ देहली की हरयानी—यह चारों हमसाया हैं। मगर इनकी हदें इन्हीं सल्तनतों की हदों से वाबस्तः नजर आती हैं। मगध (बिहार) की बौध सल्तनत, जिसका दारुल्सल्तनत पाटलीपुत्र (पटना) था, जब हिन्दोस्तान पर छा गई तो उसकी जबान भी हिन्दोस्तान की आम सरकारी जबान बन गई और आज इसी मगध की पाली जबान के कुतबे पेशावर से लेकर महाराष्ट्र के किनारों तक मिलते हैं। हिन्दोस्तान में सिंध से लेकर गुजरात तक का इलाका हमेशा ईरानियों और अरबों के जहाजों का गुजरगाह रहा और उसी का असर था कि जहाजियों के साथ-साथ उनकी जबानों के असरात भी खामोशी के साथ फैलते रहते थे। खुसूसन् सिंध वह सूबा था जो अक्सर ईरान की सल्तनत का जुज बनता और खलीज फारस के तमद्दुन से मुतास्सिर होता रहा। सिंध के आसारे कदीमा की मौजूदः तहकीकात इस नजरिया की सदाकत को रोज-बरोज आश्कारा करती जा रही है। बहरहाल आरयाई जबान की दूसरी शाख ईरानी या फारसी का असर सिंध से लेकर गुजरात तक वसीअ था। उसके बाद पहली सदी हिजरी के खातमें के करीब (सातवीं सदी ईसवी में) फतह फारस के बाद अरबों ने भी ईरानी सल्तनत के जानशीन की हैसियत से सिंध पर कब्जा किया और उनके जहाजात खलीज फारस के उबल्लः, सीराज और बसरा नामी बदरगाहों से निकलकर सिंध और गुजरात और मलेबार होकर चीन तक जाने लगे। इन जहाजों के चलाने वाले फारसी और अरबी बोलते थे। उसका असर यह होना चाहिए था कि हिंदोस्तान के जिन बन्दरगाहों से यह गुजरते हों वहाँ उनकी जबानों के कुछ अल्फाज मुस्तमिल हो जायँ और वहाँ की मुकामी जबानों के कुछ लफ्ज इन जहाजियों की जबानों पर चढ़ जायँ, चुनांचः उसकी मिसालें अरब सैयाहों और मल्लाहों की जबानों में मिलती हैं। चुनांचः आज भी हिन्दोस्तानी जहाजों के जरियः हिन्दोस्तानी जबान अफरीका और अरब और

एराक व मिस्र के बन्दरगाहों तक पहुँच गई है, और खुद मुझे अदन, जिद्दा, पोर्ट सईद, मस्सूअ और पोर्ट सूदान में हिन्दोस्तानी बोलने वाले मल्लाह और दूकानदार मिले। इस मौकः पर सबसे पहला बयान हमारे सामने एक ईरानी आमेज अरब जहाजराँ बुजुर्ग बिन शहरयार का है। वह कहता है कि मुझसे एक अरब जहाजराँ अबू मुहम्मद हसन ने बयान किया कि–"मैं सन् २८८ हि० (८८८ ई०) में मंसूरः (भक्कर) में था। वहाँ मुझसे मुस्तनद बुजुर्गों ने यह बयान किया कि अलूरा (आलूर) के राजा ने, जो हिन्दोस्तान का बड़ा राजा था—जिसकी हुकूमत कश्मीर बाला और कश्मीर जेरीन के बीच में थी और जिसका नाम 'महरोग बिन रायक' (?) था, सन् २७० हिजरी में, मंसूर के बादशाह को लिखा कि वह इसलाम की शरीयत का कुछ हाल उसको बताए, तो अब्दुल्लाह ने मंसूरः में एक अब्दुल्लाह एराकी को पाया जो बहुत तेजतबः और खुशफहम था और शायर था और जिसने हिन्दोस्तान में नश्वनुमाँ पाई थी और जो अह्ले हिन्द की मुख्तलिफ जबानों से वाकिफ था, उसने एक कसीदः लिखकर राजा को भेजा। राजा ने उसे बुला भेजा और उसके हुक्म से उसने कुरान का हिन्दी जुबान में तर्जुमः किया।" इस इक्तिबास से जाहिर होगा कि हिन्दोस्तान के सवाहिल में भी बहुत-सी मुख्तलिफ जबानें थीं और वह लोग, जिनकी असल जबान फारसी और अरबी थी, यहाँ की जबानों को सीखते और बोलते थे और इनमें यह लियाकत रखते थे कि वह इनमें शायरी कर सकते थे और कुरान पाक जैसी किताब का तर्जुमः कर सकते थे। यह हिंदोस्तानी और इसलामी जुबान के बाहमी इख्तिलात और मेलजोल के इम्कान का पहला वाकया है जो सफरनामों और तारीखों में मजकूर है। इस वाकयः का जमानः सन् २७० हिजरी यानी ८७० ई० है और आज से करीबन् एक हजार साल पहले की बात है। इसके तैंतीस बरस के बाद मसऊदी हिन्दोस्तान आता है। वह सन् ३०२ हिजरी में यहाँ आया था। वह हिन्दोस्तान का इब्तिदाई हाल इस तरह लिखता है—

"इसके बाद हिन्द के लोगों के खयालात मुख्तलिफ हो गए और मुख्तलिफ गिरोह पैदा हो गए, और हर रईस ने अपनी रियासत अलग कर ली, तो सिंध पर एक राजा बना और कन्नौज में दूसरा राजा हुआ, और कश्मीर में तीसरा राजा था, और मांगेर पर–जो बड़ा इलाका है (गुजरात व काठियावार)–बल्हरा (वलभराय) की हुकूमत हुई, और जो अब तक–हमारे जमानः तक, जो सन् ३३२ हि० है–यह राजा इसी लकब से मुलक्कब है; और हिन्द की जमीन बहुत वसीय जमीन है, खुश्की पहाड़ और दरिया में फैली है। इनका मुल्क एक तरफ जाबज (जावा) से मिलता है जो जजीरों के बादशाह 'महराज' का दारुल्ममुल्कत है और यह मुल्क (जावा) हिन्दोस्तान और चीन के दर्मियान हद्दे फासिल है; लेकिन हिन्दोस्तान की तरफ मंसूब है और दूसरी तरफ हिंदोस्तान कोहिस्तान से मुतस्सिल खुरासान और सिंध और तिबत तक है, और इन हिन्दोस्तानी रियासतों में बाहम इख्तिलाफ और लड़ाइयाँ हैं और इनकी जबानें अलग-अलग हैं और इनके मजहबी खयालात मुख्तलिफ हैं, ज्यादःतर लोग तनासिख और आवागौन के कायल हैं, जैसा कि हमने पहले कहा है।"

इसके बाद यही सैयाह सिंध के हाल में कहता है–"और सिंध की जबान हिंदोस्तान की जबान से अलग है.... और मांगेर की जबान–जो बल्हरा (वलभराय) का दारुल्सल्तनत है–गीरी है और इसके साहिली शहरों से चिमूर, सोपारः और थानः (मौजूदः बबई के पास) की जबान लारी है।" यह सिंध, गुजरात, काठियावार और कोकन की जबानों की निस्बत कदीम अरबी शहादत है। इसके बाद बगदादी सैयाह इस्तखरी का जमानः है, जो सन् ३४० हि० में आया था। वह कहता है–'मंसूरः (मौजूदः भक्कर वाकयः सिंध) और मुल्तान और इनके अतराफ की जबान अरबी और सिंधी है और मुकरान वालों की जबान फारसी और मुकरानी है।" बअइनः यही अलफाज इब्न हौकल के सफरनामः में मिलते हैं। इसका जमानः सन् ३३१ हि० से ३५८ हि० तक है। वह कहता है–"मंसूरः (भक्कर) और मुल्तान और उसके अतराफ में अरबी और सिंधी बोली जाती है।" सन् ३७५ हि० (सन् ९८५ ई०) में बशारी मुकद्दसी हिन्दोस्तान आता है। वह मुल्तान के हाल में लिखता है–"और फारसी जबान समझी जाती है।" फिर दीबल यानी ठट्ठ के बन्दरगाह के हाल में लिखता है–"दीबल (ठट्ठ) समंदर के साहिल पर है। उसके चारों तरफ सौ गाँव के करीब हैं। अक्सर गैरमुस्लिम हिन्दू (कुफ्फार) हैं। समंदर का पानी शहर की दीवारों से

आकर लगता है। यह सब सौदागर हैं। इनकी जबान सिंधी और अरबी है।" इसी तरह, इब्न नदीम बगदादी, जिसने अपनी अल्फेहरिस्त सन् ३७७ हि० में तरतीब दी है, सिंध की जबानों की निस्बत–जिसकी वसअत में इसके नजदीक हिन्दोंस्तान भी दाखिल है–यह लिखता है–"यह लोग मुख्तलिफ जबानों और मुख्तलिफ मजहब वाले हैं और इनके लिखने के खत कई हैं। मुझ से एक ऐसे सख्श ने, जो इनके मुल्क में घूमा-फिरा था, कहा था कि इनके यहाँ दो सौ खत के करीब मुस्तामिल हैं। मैंने (बगदाद के) कसर् हुकूमत में एक बुत देखा था, जिसकी निस्बत मुझे कहा गया था कि यह बुद्ध की मूरत है।....इसके नीचे इस तरह लिखा हुआ था।"

अब वह जमानः आया जब सुल्तान महमूद का बाप अमीर सुबुक्तगीन अपनी नई सल्तनत का पुतला बनाकर खड़ा कर रहा था, और हिन्दोस्तान की बोलियों में अरबी व फारसी के बाद तुर्की के मेल का वक्त आया। उस वक्त पेशावर और पंजाब और गजनी में सुलह और लड़ाई के तअल्लुकात कायम थे। आमद व रफ्त, लड़ाई-भिड़ाई और सुलह व पयाम के लिये दोनों कौमों की जबानों में इख्तिलात का मौका आ गया था। इस वक्त लड़ाइयों के हजारों हिन्दू गुलाम और नौकरी पेशा हिन्दू सिपाही अफगानिस्तान और तुर्किस्तान में घर-घर फैले थे। अमीर सुबुक्तगीन की फौज में दूसरी कौमों के साथ हिन्दू भी दाखिल थे। "व लश्कर ख्वास्तन गिरफ्त व बिसियार मर्दुम जमा शुद अज हिन्द व खलज व अज हर दस्ती।"

सुल्तान महमूद के दरबार में हिन्दी का मुतरज्जिम 'तिलक' नाम एक हिन्दू था जो बचपन में 'शीराज' पहुँच गया था और फारसी सीख ली थी और हिन्दुओं के साथ नामः व पयाम और मरासलत की खिदमत इसके सुपुर्द थी। "खती नीको हिन्दवी व फारसी व मुद्दते दराज व कश्मीर रफ्तः बूद व शागिर्दी करदः.....व ऊरादबीरी व मुतरज्जिमी कर्दी बा हिन्दवाँ" अबुलफजल बैंकही अपनी तारीख अल सुबुक्तगीन में अपने जमानः यानी सुल्तान मसऊद (सन् ४३१ हि०) के अहद में इसी किस्म के एक और हिन्दू मुतरज्जिम 'बीरबल' का जिक्र करता है जिसका तअल्लुक इतके दफ्तर इंशाय से था– "हम चुनाँ बीरबल बदीवाने मा।" सुल्तान महमूद के दरबार में जहाँ अरब व अजम के अहलेइल्म थे वहाँ हिन्दोस्तान के अहलेइल्म भी शरीकबज्म रहते थे। कालिंजर के राजा नन्दा ने सन् ४१३ हि० में जब सुल्तान की शान में हिन्दी में शेर लिख कर भेजा, उस मौके पर फिरिश्तः में है– "नन्दा बजबान हिन्दी दर मदः सुल्तान शअरी गुफ्तः निज्दा व फरिस्ताद सुल्तान आँरा बफजलाय हिन्दा व अरब व अजम कि दर मुलाजिमत अवबून्दद नमूदः हमगी तहसीन व आफ्री करदन्द।" यह वह जमानः है जब लाहौर भी फतह नहीं हुआ था। इस जमानः में भी सुल्तान के दरबार में अरब व अजम और हिन्द के फुजला पहलू ब पहलू बैठे और सब इतना दरखोर रखते थे कि हिन्दी शेर को समझें और मजः लें।

गजनवी बादशाहों के जमाने में, जब पंजाब गजनी का सूबा था, हजारों-लाखों मुसलमानों, जिनकी जबान फारसी थी–पंजाब में बस गये थे। जाहिर है कि इनमें और आम अह्ले हिन्द में बोलचाल इस तरह होती होगी कि वह हिन्दी मिली हुई फारसी और यह फारसी मिली हुई हिन्दी बोलते हों और चन्द रोज में यह कैफियत हो गई कि मुसलमान हिन्दी में या फारसी-आमेज हिन्दी में शायरी करने लगे। चुनांचः इस अहद के मशहूर शायर 'मसऊद साद सलमाँ' अल्मुतवफ्फी ने, जो सन् ५ हि० में लाहौर में पैदा हुआ था और लाहौर में रहता था, एक अरबी का और एक फारसी का और एक हिन्द का दीवान यादगार छोड़ा– "यके बताजी व यके बपारसी व यके बहिन्दी–(लुबाबुल्-अलबाब ओफी, जिल्द २, सफा २४६ गब)।" यह शौक रोज-बरोज तरक्की करता गया। यहाँ तक कि एक तुर्क खानदान में, जो देहली में रह पड़ा था, अमीर खुसरो (अल्मुतवफ्फी सन् २५ हि०) जैसा हमःदाँ शायर पैदा हुआ जिसने अरबी, फारसी, हिन्दी अलहदः-अलहदः भी और तीनों जबानो के मिसरों को मिलाकर भी शायरी की। चुनांचः वह खुद अपने दीवान इज्जतुल्कमाल के खात्मा में लिखता है–"पेश अजी अज बादशाहा ने सखुन कसे रा सह दीवान न बूद, मगर मरा कि खुसरूए ममालिके कलामम मसऊदे सादए सलमाँरा अगरचेः हस्त अमा आँ सह दीवान दर इबारत अस्त अरबी व पारसी व हिन्दी दर पारसी मुजर्रद कसे सखुन रा सेह किस्म न करदः जुज मन की दरीं कार कस्साम आदिलम् किस्मत् चू चुनीं बूद चे तदबीर कुनम्।" अमीर को अपने हिन्दी कलाम पर जो नाज था

वह उनके इस शेर से नुमायाँ है जिसको उन्होंने इसी किताब के खात्मा में लिखा है–"चु मन तूतिये हिन्दम अज रास्तपुरसी, जेमन हिन्दवी पुर्स तानग्ज गोयम।" इसी खात्मा में ऐहाम की एक नई सिफत पैदा करने पर फख्र किया है—"बाज ऐहामी दीगर बरबस्त कर्दः अम कि इक-तरफ हमः हिन्दवी खेज मी उफतद् व जानिब दीगर पारसी मी खेजद्।"

आही आई हमाँ प्यारि आही।
मारी-मारी बराय मोरी माही।

अमीर ने अपनी मसनवी नुहसिपहर में हिन्दोस्तान की एक फजीलत यह बयान की है कि यहाँ के लोग हर मुल्क की जबान बोल सकते हैं, मगर बेरूनी लोग यहाँ की जबान नहीं बोल सकते। कहते हैं—

"हस्त दवम आँकि जहिन्द आद्मियाँ,
जुम्लः व गोयन्द जबानहा बबयाँ।
लेक अज अकसाए दिगर हर कसे,
गुफ्त नयारद सखुने हिन्द बसे।
हस्त खता व मुगल व तुर्क व अरब,
दर सखुने हिन्दवी मा दोख्तः लब।"

गरज हर जगह वह अपनी जबान को हिन्दवी कहते हैं। अमीर खुसरो ने अपनी मसनवी नुहसिपहर में हिन्दोस्तान के मुख्तलिफ सूबों की हसब जेल बोलियों के नाम लिए हैं--सिन्धी, लाहौरी, कश्मीरी, बंगाली, गौड़ी (गौड़ बंगाल का एक हिस्सा), गुजराती, तिलगी, माबरी (कर्नाटकी जिसको कटरी कहते हैं), धूरसमन्दी (धूरसमन्दर कारोमण्डल का पायःतख्त था, जो उस जमाना में नया फतह हुआ था), अवधी और देहलवी। यही जबानें थोड़े-थोड़े फर्क से अब भी मौजूद हैं। अमीर खुसरो के तीन सौ बरस के बाद, अकबर के जमाने में, हिन्दोस्तान के मुख्तलिफ सूबों में यही बोलियाँ रायज थीं। अबुलफजल हिन्दोस्तान की मुस्तकिल जबानों का जिक्र इस तरह करता है—"देहलवी, बंगाली, मुल्तानी, माड़वारी, गुजराती, तिलंगी, मरहटी, करनाटकी, सिन्धी, अफगानी, शाल (जो सिन्ध, काबुल और कन्धार के बीच में है), बिलोचिस्तानी और कश्मीरी।"

ऊपर के इक्तिबासात से दो बातें साबित होती हैं। एक यह कि इस मुल्क में हर जमानः में सूबःवार बोलियाँ बोली जाती थीं और इसमें कोई एक आम और मुश्तरिक बोली न थी, और दूसरी यह कि इस जरूरत को पूरा करने के लिये मुसलमानों के अहद में कुदरती तौर से एक जबान तैयार हो रही थी। हिन्दोस्तान में इसलामी हुकूमतों के छः सौ बरस कयाम के बाद भी मुल्क में जबानों के इख्तिलाफ का यही हाल था कि एक सूबा का रहने वाला दूसरे सूबा के रहने वाले से बातचीत और कारोबार करने से आजिज था। खयाल किया जा सकता है कि ऐसे मुल्क को, जिसमें कम अज कम तेरह मुस्तकिल जबानें बोली जाती हों, एक ममलुकत या एक हुकूमत और एक मुल्क क्योंकर करार दिया जा सकता था, और ऐसी मुख्तलिफ बोलियों और जबानों वाले मुल्क के इन्तजाम और कारोबार के लिये एक मुतहिदा व मुश्तरकः जबान की कितनी सख्त जरूरत थी। यही बात थी जिसने इस मुल्क में एक नई भाषा पैदा की और उसको तरक्की दी।

इसलामी अहद की अदबी तारीख के गहरे मुताला से मालूम होता है कि यह मखलूत जबान सिन्ध, गुजरात, अवध, दकिन, पंजाब और बंगाल हर जगह की सूबःवार जबानों से मिलकर हर सूबः में अलग पैदा हुई जिनमें खुसूसियत के साथ जिक्र के काबिल सिन्धी, गुजराती, दखनी और देहलवी हैं। जिन सूबों की बोलियों को अलग वजूद नहीं बख्शा गया, इनमें भी यह अब तक मानना पड़ता है कि इनकी दो किस्में हैं—एक मुसलमानी और एक खालिस देशी। चुनांचः बंगाली, मरहटी, कंटरी, तिलंगी, मलयालम् हर एक में मुसलमानी बोली खालिस बोली से अलग है। मुसलमानी बंगाली, मुसलमानी मरहटी, मुसलमानी तिलंगी–खालिस बंगाली, खालिस मरहटी और खालिस तिलंगी से अलग और मुमताज है। यह इम्तियाज यही है कि मुसलमान इन सूबःवार बोलियों में अरबी व फारसी लफ्जों को मिलाकर बोलते हैं और इन सूबों के असल बाशिंदे इनको खालिस और बेमेल बोलते हैं। अब सूरत यह हुई कि हर सूबः की मुकामी बोलियों में मुसलमानों की जुबान के अलफाज का मेल होकर एक नई बोली पैदा होने लगी।

मुसलमानों और हिन्दुओं का यह मेल-जोल सबसे पहले मुलतान से लेकर ठट्ठ तक सिन्ध में और फिर यहाँ से गुजरात और काठियावार तक हुआ होगा। इस मेल-जोल से जो जबान बनी उसका पहला नमूनः हमको सन् ७८२ हि० में, फीरोजशाह तुगलक के अहद में, सिन्ध में, मिलता है। सन् मज्कूर में सुल्तान ठट्ठ पर नाकाम हमला करके जब गुजरात जाता है, तो ठट्ठ वालों ने इसको अपने शेख की करामात समझकर कहा—'बरकते शेख थया एक मुआ एक था।' यानी 'यह शेख की बरकत थी कि एक हमलावर (सुल्तान मुहम्मदशाह तुगलक, जिसने सन् ७५२ हि० में हमला किया था) मर गया और दूसरा (सुल्तान फीरोजशाह तुगलक) नाकाम रहा।' इस इबारत से यह आइनः है कि उस जमानः—सन् ७६२ हि०—में अरबी, फारसी और हिन्दोस्तानी बोलियों का मजमूअः, जिसको आज आप उर्दू कहते हैं, पैदा हो चुका था। इन वाकयात से यह भी मालूम होगा कि इस जबान की पैदाइश की वजह मुख्तलिफ कौमों का कारोबारी और तिजारती इख्तिलात और मेल-जोल था और उसी जरूरत ने इस नयी जबान को वजूद बख्शा था। इस जबान की पैदाइश की और पैदाइश की न सही तो इसके कयामे, बका और तरक्की की वजह इससे भी बढ़कर नागुरेज एक और है। मुसलमान जब इस पूरे मुल्क पर हुक्मराँ हुए, तो गो फारसी सरकारी जबान की हैसियत से उनके साथ आयी ताहम एक ऐसी कौम के लिए, जिसका तअल्लुक पूरे मुल्क से हो, इस मुल्क में कोई एक भी मुतहिदः और मुश्तरकः जबान मौजूद न थी। लिखे-पढ़े तो खैर आज की अंगरेजी की तरह कल की फारसी से काम चला लेते थे, मगर अनपढ़ नाखाँदः और आवाम के लिए एक ऐसी जबान की सख्त जरूरत थी, जो पूरे मुल्क में बोलचाल, आमद व रफ्त और कारबार में कारआमद हो और बईनः यही जरूरत आज भी मौजूद है।

जबान उर्दू की तारीख के मुतल्लिक मीर अम्मन और सर सैयद और दूसरे पुराने बुजुर्गों ने जो बयान सुनाया था वह अब पारीनः समझा जाता है और अब इस मजमून पर चन्द ऐसी मुहकिकानः किताबें लिखी गयी हैं, जिनसे इस जबान की तारीख का दुश्वारगुजार रास्तः बहुत कुछ साफ हो गया है और अब इसके वजूद का सुराग बहुत दूर तक लगाया जा चुका है और आज से पाँच सौ बरस पहले के फिकरे जमा किये गये हैं और तैमूरी बादशाहों से बहुत पहले की नज्म व नस्र किताबें मुहय्या की गयी हैं और अब चहार-दरवेश के मुसन्निफ मीर अम्मन के इस बयान को लोग सिर्फ बुजुर्गों की कहानी समझते हैं—"हकीकत उर्दू जबान की बुजुर्गों की जबान से यों सुनी है कि दिल्ली शहर हिन्दुओं के नजदीक चौजुगी है, इन्हीं के राजा-परजा कदीम से वहाँ रहते थे और अपनी भाषा बोलते थे। हजार बरस से मुसलमानों का अमल हुआ। सुल्तान महमूद गजनवी आया, फिर गोरी और लोदी बादशाह हुए। इस आमद व रफ्त के बायस कुछ जबानों ने हिन्दू-मुसलमान की आमेजिश पायी। आखिर अमीर तैमूर ने, जिनके घराने में अब तलक नाम-नेहाद सल्तनत का चला जाता है, हिन्दोस्तान को लिया। उनके आने और रहने से लश्कर का बाजार शहर में दाखिल हुआ। इस वास्ते शहर का बाजार 'उर्दू' कहलाया। जब अकबर बादशाह तख्त पर बैठे तब चारो तरफ के मुल्कों से सब कौम कदरदानी और फैज-रसानी उस खानदान लासानी की सुनकर हुजूर में आकर जमा हुए। लेकिन हरएक की गोयाई और बोली जुदी-जुदी थी। इकट्ठी होने से आपस में लेन-देन, सौदा-सुल्फ, सवाल-जवाब करने से एक जबान की मुकर्रर हुई। जब हजरत शाहजहाँ साहबे फेरान ने किला मुबारक और जामा मसजिद और शहरपनाह तामीर करवाया तब से शाहजहाँ-आबाद (शाहजहानाबाद) मशहूर हुआ। अगरचे दिल्ली जुदी है और वह पुराना शहर और यह नया शहर कहलाता है और वहाँ के बाजार को 'उर्दूए मुअल्ला' खिताब दिया। लेकिन मेरे नजदीक इन चन्द सतरों में उर्दू की जो तारीख बयान की गयी है वह अशखास के नामों को छोड़कर सरतापा हकीकत है। आजकल बाज काफिलों ने 'पजाब में उर्दू' और बाज अहले दकिन ने 'दकिन में उर्दू' और बाज अजीजों ने 'गुजरात में उर्दू' का नारा बुलन्द किया है। लेकित हकीकत यह मालूम होती है कि हर मुमताज सूबः की मुकामी बोली में मुसलमानों की आमदरफ्त और मेल-जोल से जो तगैयुरात हुए, इन सबका नाम उन्होंने 'उर्दू' रक्खा है; हालाँकि इनका नाम पंजाबी, दखनी, गुजराती और गूजरी वगैरः रखना चाहिए, जैसा कि उस अहद के बाज लोगों ने उसको उन्हीं नामों से याद किया है और उसको दखनी और गूजरी बरमला कहा है, उस वक्त तक इस जबान के लिए 'उर्दू' का लफ्ज पैदा भी नहीं हुआ था।

अमीर खुसरो और अबुलफजल दोनों ने हिन्दोस्तान की देशी जबानों में 'देहलवी जबान' का अलग नाम लिया है। अहदे शाहजहानी में जब दिल्ली में 'उर्दूए-मुअल्ला' बना तो उस 'जबान देहली' या 'जबान देहलवी' का नाम 'जबान उर्दूए-मुअल्ला' पड़ गया। चुनांचः लफ्ज 'उर्दू', जबान के मानी में, देहली के अलावः किसी सूबः की जबान पर इतलाक नहीं पाया है। मीर तकी मीर की तहरीरी सनद में जब उसका नाम पहली दफा आया है, तो देहली की ही जबान के लिए आया है; मगर फिर भी वह इस्तेलाह के तौर पर नहीं, बल्कि लुगत के तौर पर आया है; यानी मीर ने 'उर्दू जबान' नहीं कहा, बल्कि 'उर्दू की जबान' कहा है—'रेख्ता के शेरेस्त बतौर शेरे फारसी बजबाने उर्दूए मुअल्ला बादशाहे हिन्दोस्तान।' यानी 'बादशाह हिन्दोस्तान के कैंप या पायःतख्त की जबान।' इससे मालूम हुआ कि मीर के जमानः तक लफ्ज 'उर्दू' जबान के मानी में मुस्तअमिल न था, मगर इसके बाद रफ्तः-रफ्तः आम इस्तेमाल में जबान उर्दू (उर्दू की जबान के बजाय खुद जबान का नाम 'उर्दू' पड़ गया है और फिर यह 'उर्दूए-मुअल्ला' से निकलकर मुल्क में हर जगह उसी असूल पर फैल गयी जिस असूल पर हिन्दोस्तान में हमशः राजधानी की भाषा तमाम हुदूद सल्तनत में फैलती रही है।

इस जबान की अस्लियत क्या है? हमने पिछली सतरों में इसको बार-बार 'नयी जबान' कहा है, मगर क्या हकीकत में इसको नयी जबान कहना चाहिए? हम जिसको आज उर्दू कहते हैं वह हकीकत में देहली और अतराफ देहली की वह पुरानी बोली है जो वहाँ पहले से बोली जा रही थी और जिसको खुसरो और अबुलफजल ने 'देहलवी' कहा है और जिसमें जमानः के कायदः के मुताबिक इन्कलाब, उतार-चढ़ाव और खराद होकर लफ्जो की मुनासिब सूरत बन गयी। हर जबान तीन किस्म के लफ्जों से बनती है—इस्म, फेल और हर्फ। इस बोली में, जिसको अब उर्दू कहने लगे हैं, फेल जितने हैं वह देहलवी हिन्दी के हैं। हर्फ जितने हैं, एक-दो को छोड़कर, वह हिन्दी के हैं। अलबत्तः इस्म में आधे इस हिन्दी के और आधे अरबी, फारसी और तुर्की के लफ्ज हैं और बाद को कुछ पुर्तगाली और फिरंगी के वह लफ्ज मिल गये हैं जिनके मुसम्मा इन बाहर के मुल्कों से हैं जैसे नीलाम, पाव रोटी, पादरी, आलमारी वगैरः। इसलिये उर्दू और हिन्दी—वह भी देहलवी हिन्दी—में सिर्फ दो फर्क हैं। देहलवी हिन्दी तो अपनी जगह पर रह गयी। लेकिन इस हिन्दी में उस वक्त के नये जरूरियात के बहुत से अरबी, फारसी और तुर्की के वह अलफाज आकर मिले जिनके मानी और मुसम्मा उन मुल्कों से आये थे। दूसरा फर्क यह पैदा हुआ कि वह हिन्दी अपने खत में और यह उर्दू फारसी खत में लिखी जाने लगी। रफ्तः-रफ्तः एक और फर्क भी पैदा हुआ कि पुरानी हिन्दी के बहुत से लफ्जों में जो जबान पर भारी और सकील थे, जमानः और जबान की फितरी तरक्की के असूल के मुताबिक, हल्कापन और खूबसूरती और खुशआवाजी पैदा करने की कोशिश की गयी। इसी तरह अरबी और फारसी और तुर्की के लफ्जों में भी अपनी तबीयत के मुताबिक इसने तब्दीलियाँ पैदा कीं। उर्दू ने हिन्दी के लफ्जों में इस किस्म का जो तगैयुर किया है उसकी बहुत सी मिसालें मिलेंगी।

चूँकि अब पूरा मुल्क एक था और हमेशः आमद व रफ्त लगी रहती थी, इसीलिये इस देहलवी हिन्दी में सैकड़ों लफ्ज हिन्दोस्तान के दूसरे सूबों की बोलियों से आकर रिल-मिल गये और खुसूसियत के साथ पंजाबी और दखनी लफ्जों की आमेजिश ज्यादः हुयी। कहीं यह हुआ है कि फारसी और हिन्दी दोनों के हममानी लफ्जों को एक जगह करके बोलना शुरू किया, ताकि दोनो जबानों के अलग-अलग जानने वाले एक लफ्ज से दूसरे लफ्ज के मानी समझ लें। जैसे—धन-दौलत, रूप-रंग, रंग ढग, खाक-धूल, कागज-पत्तर, मोटा-ताजा, हंसी-मजाक, हंसी-खुशी, भाई-बिरादर, रिश्तः-नाता। कभी फारसी लफ्ज में जरा हिन्दीपन पैदा कर देते हैं। जैसे—जन-मजूर यानी मजदूर, लौंडी बाँदी (बन्दी, बन्दः बमानी गुलाम), बाल-बच्चे ('बाल' हिन्दी और 'बच्चा' फारसी, दोनों हममानी है)। कहीं यह किया है कि हिन्दी लफ्ज को फारसी तरकीबों के साथ इस्तेमाल किया है। जैसे—समझदार, तिराहा, चौराहा, गाड़ीवान, छमाही, चितरशाही, भालाबरदार। जरूरत है कि उर्दू और हिन्दी लिखने वाले दोनों इस बात की कोशिश करें कि वह एक दूसरे से दूर होने के बजाय एक दूसरे से नजदीक हों, वरना वह दिन दूर नहीं, जब यह एक मुल्क दो जबानों में हमेशः के लिए बंटकर अपनी कौमी व मुल्की वहदत का खातिमा कर देगा।

भ्रान्तियों के शिकार

□ विद्यासागर दीक्षित

जिस आदमी ने सदैव अपने अहम् अधिकार एवं आकाँक्षा को कुचलकर गहरे–दुर्भेद्य अँधेरों में जनता पार्टी को जन्म दिया था, जिसने जेल के सीखचों में देश को काँग्रेस का विकल्प देने के सपने देखे, सुख–सुविधाओं से विरत रह कर उन सपनों को पूरा करने की कसम खायी और वह जो नैतिक एवं मानवीय मूल्यों के शव में नये प्राण फूँकने के लिए आज भी कटिबद्ध है, आज जब उसी व्यक्ति के विरुद्ध सबसे ज्यादा जहर उगला जा रहा हो, तो बड़ा अजीब सा लगता है। देश में सहसा एक दमघोटू वातावरण बना, साँसों की दरारों से अफवाहों ने जन्म लिया और फिर इन अफवाहों ने टिप्पणियों एवं भविष्यवाणियों की एक कतार खड़ी कर दी। जो विरोधी हैं वे खुले तौर से और जो अपने हैं वे दबे स्वर से कहने लगे—'जनता पार्टी यदि टूटी तो उसका कारण चौधरी साहब होंगे।' कितनी बड़ी विडम्बना-कितना दर्दीला विरोधाभास। हम इसे प्रजातन्त्र भी कह सकते हैं और चौधरी साहब का दुर्भाग्य भी। इतिहास के हर महत्त्वपूर्ण मोड़ पर उन्हें इसी तरह गलत समझा गया। शायद यह उनकी जन्म–कुन्डली में लिखा है, जिसे मेटा नहीं जा सकता।

राजनीति एवं सार्वजनिक जीवन से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति के मन–मस्तिष्क में हर क्षण उभरने वाले इस प्रश्न को जब दुहराया जाता है—क्या जनता पार्टी टूटेगी ? तब–तब तड़ाक से दूसरा तमाचा मेरे गालों पर जड़ दिया जाता है, 'देखो; चौधरी साहब क्या करते हैं ?' उनके व्यक्तित्व पर रहस्य-मयता की एक परत बरफ की तरह जमी है और यह परत कभी–कभी इतनी मोटी हो जाती है कि उसके जमने और पिघलने के अन्तराल में शंकाओं के अनगिनत अँकुर उग आते हैं। अपने चरित्र एवं व्यक्तित्व से जुड़ी इस रहस्यमयता से न जाने क्यों उन्हें बेहद प्यार है।

वह आधा जीवन काँग्रेस में रहे। राजनीति में महात्मागाँधी उनके इष्टदेव थे, किन्तु नेहरू से उनके गम्भीर मतभेद थे। फिर भी यह बात कल्पना के बाहर थी, कि वह कभी भी काँग्रेस छोड़ेंगे। तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री चन्द्रभानु गुप्त से उनके मतभेद बहुत गम्भीर भी नहीं थे। मन्त्रिमण्डल में दो मन्त्रियों को हटाने और दो मन्त्रियों को शामिल करने के प्रश्न पर तनातनी शुरू हुयी थी। चन्द्रभानु गुप्त को तनिक भी अन्दाज़ होता कि चौधरी चरणसिंह इतनी मामूली बात पर १७ अन्य विधायकों के साथ काँग्रेस छोड़ देंगे, तो उस समय न तो प्रदेश में पदारूढ़ काँग्रेस सरकार का ऐतिहासिक पतन होता और न चौधरी साहब के व्यक्तित्व का अप्रत्या-शित उदय। जोड़–तोड़ में माहिर गुप्त जी काँग्रेस सरकार को धराशायी होने से नहीं रोक सके थे। रातोरात चौधरी साहब काँग्रेस-विरोध के प्रतीक बन गये थे। काँग्रेस सरकार की भ्रष्टता, जान–जीवन में व्याप्त राजनीतिक जड़ता, दमन और अन्याय के खिलाफ सभी प्रमुख विरोधी दलों का मोर्चा उन्होंने आनन–फानन बना लिया था। मात्र १७ विधायकों के नेता को जब देश की प्रथम संविद सरकार का मुख्यमन्त्री चुना गया, तो इस प्रयोग को दल–बदल, अवसर-वादिता और घिनौनी पद–लिप्सा की संज्ञा दी गयी थी। उन दिनों भी उन्हें बहुत गलत समझा गया था। मुख्यमन्त्री की कुर्सी हथियाने के लिए किये गये इस दल–बदल ने

चौधरी साहब को कटघरे में खड़ा कर दिया था। क्या उन्हें मात्र अवसरों की तलाश थी? वह कौन से लक्ष्य और आदर्श थे, जिनके लिए उन्हें अपने सिद्धान्तों और अन्तरात्मा की आवाज के खिलाफ आचरण करने के लिए विवश होना पड़ा था? एक समूचे व्यक्तित्व की आचार-संहिता दाँव पर लगी थी। इतिहास ने अन्ततः सिद्ध किया कि जिन लक्ष्य-सिद्धान्तों के लिए उन्होंने यह सब किया था, उन्हीं की तलाश और पूर्त्ति के लिए उन्हें संविद सरकार को भी ठुकराना जरूरी लगा और चौधरी साहब ने मुख्यमन्त्री पद से त्याग-पत्र देकर यह साबित कर दिया कि उन्होंने पद-लिप्सा से अभिभूत होकर दल-बदल नहीं किया था, अपितु वह समस्त राजनीतिक ढाँचे में क्रान्तिकारी रद्दोबदल को अनिवार्य समझने लगे थे। उन्होंने अपने सिद्धान्तों एव संचित जीवन-मूल्यों से समझौते किये जरूर, किन्तु यह समझौते निर्धारित लक्ष्यों की कीमत पर करना उन्हें मन्जूर नहीं था। एक झटके में वह अवसरवाद तथा पद-लिप्सा के अनगल आरोपों की कैद से मुक्त हो गये थे।

सन् १९७० तक उनका व्यक्तित्व भारतीय क्रान्ति दल का पर्याय बन गया। चुनाव में उनका दल दुर्भाग्यवश बहुमत में तो नहीं आ पाया, किन्तु यह दल काँग्रेस के विकल्प के रूप में उभर चुका था। बाद में इन्दिरा गाँधी ने उन पर डोरे डालना शुरू किया। लगता था चौधरी साहब अब फिसले कि तब फिसले। उनके मन में काँग्रेस के प्रति अनुरक्ति अभी भी शेष थी। इन्दिरा गाँधी पूरी तौर से उत्तर-प्रदेश का नेतृत्व उन्हें सौंप कर निश्चिन्त हो जाना चाहती थीं। उस दौरान, यही कोई सन् १९७० के आसपास, चौधरी साहब के निकटतम सहयोगी तक कहने लगे थे, वह काँग्रेस में वापस चले जायेंगे। कहने वाले यह भी कहते थे कि चौधरी साहब बिना कुर्सी के नहीं रह सकते। एक दौर उन दिनों पुनः आया था, जब उनका आचरण संदिग्ध समझा जाने लगा था। यह आमचर्चा थी कि इन्दिरा जी उन्हें केन्द्र में गृहमन्त्री बनाकर ला रही हैं। राजनीति के ऐसे नाजुक मोड़ पर कोई भी इन्सान गलती कर सकता था, किन्तु अपनी मंजिल पाने का संकल्प इतना दृढ़ था कि उन्होंने इन्दिरा गाँधी द्वारा दिये जाने वाले समस्त प्रलोभनों को ठुकरा दिया। कुर्सी के लिए उन्होंने अपनी आत्मा का हनन नहीं किया। इस अग्नि-परीक्षा में भी उनका नेतृत्व कुन्दन की तरह चमक उठा।

यह बात और है कि वह विवादों और अफवाहों की गठरी लादकर राजनीति के राजमार्ग पर सैर करने में 'थ्रिल' महसूस करते हैं। यही 'थ्रिल' उनकी आत्मा में ऐसा रसा-बसा है कि यदा-कदा उनका व्यक्तित्व विवादास्पद बन जाता है। विवादों ने सदैव उन्हें निरापद बनाया है, उनकी राजनीति को नया मोड़ दिया है। वह बड़े ही निस्पृह भाव से विवादों के आलिंगन-पाश से मुक्त हो, सिद्धान्तों एवं जीवन-मूल्यों की रक्षा के लिए विष तक पीने में संकोच नहीं करते तो अनायास ही उनके विरोधियों, आलोचकों और प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा बनाया गया कुचक्रों का ताशमहल ढह जाता है और उनका नेतृत्व पहले की अपेक्षा और भी विराट् हो जाता है।

सन् १९७१ के संसदीय चुनावों में पत्रकारों और राजनीति के सारे पण्डितों की गणित गलत हो गयी थी। अपने साथियों और सलाहकारों के दबाव में वह लोकसभा का चुनाव बेमन लड़े थे, किन्तु उस समय भी सारी राजनीतिक अटकलों का केन्द्र-बिन्दु वही थे। चौधरी साहब लोकसभा का चुनाव क्यों लड़ रहे हैं? क्या वह सन्तुलन की राजनीति करके प्रधानमन्त्री बनना चाहते हैं? अखबार की सुर्खियों में यह आमचर्चा थी कि काँग्रेस को बहुमत नहीं मिलेगा, भारतीय क्रान्तिदल के तीस या चालीस सदस्य चुने जायेंगे और तब चौधरी साहब सन्तुलन की राजनीति का लाभ उठाकर प्रधानमन्त्री बन जायेंगे। चौधरी साहब हँस देते थे। उस हँसी को अर्थमयता प्रदान करना बड़ा कठिन था। यद्यपि उनकी हँसी अर्थहीन भी नहीं थी। जीवन का वह पहला चुनाव हार गये। काँग्रेस को दो-तिहाई बहुमत मिल गया और अटकलों में कैद चौधरी साहब ने राहत की साँस ली थी।

फिर आया आपात्काल। अन्य नेताओं के साथ चौधरी साहब भी गिरफ्तार किये गये। चुनाव की घोषणा के थोड़ा ज्यादा पहले इन्दिरा गाँधी ने उन्हें मुक्त कर दिया। 'चौधरी साहब से जेल में बात हो गयी है; उन्होंने अपनी गलती मान ली है और अब वह इन्दिरा गाँधी का साथ देंगे।' प्रधानमन्त्री बहुगुणा से रुष्ट हैं और चौधरी साहब को काँग्रेस

में लाकर उत्तर प्रदेश की बागडोर उन्हें सौंप रही हैं।' चौधरी साहब जेल से बाहर आ गये थे और उनका व्यक्तित्व अटकलों तथा अफवाहों की भूलभुलैय्याँ में भटकने लगा था कि अचानक एक भाषण की चर्चा शुरू हो गयी। विधानसभा में उन्होंने श्रीमती इन्दिरा गाँधी और उनके पुत्र संजय गाँधी के खिलाफ बड़ा ही सनसनीखेज भाषण दिया। सेन्सर के बावजूद यह भाषण उत्तर प्रदेश के बच्चे-बच्चे की जबान पर था। चौधरी साहब के इस भाषण ने उनके आलोचकों के मुँह पर एक बार पुनः कालिख-सी पोत दी। इन्दिरा जी के जो दूत चौधरी साहब पर डोरे डाल रहे थे, हतप्रभ रह गये। 'यह आदमी है क्या? कब क्या करेगा, कहना कितना मुश्किल है।' किसी ने कहा सनक का धनी है, तो किसी ने कहा–'अब इनके दुर्दिन आ गये हैं।' पर उन्हें कहाँ चिन्ता है दुर्दिनों की? वह राजनीति मस्तिष्क से करते हैं, पर अहम फैसले मन की आवाज पर। वह अपने अन्तर्मन को सिद्धान्तों के साये में जीवन्त बनाये रखना चाहते हैं– फिर चाहे जो हो।

चुनावों की घोषणा से सारा देश चौंक गया। सारे नेता जेलों से बाहर आकर इस चुनौती का सामना करने की तैयारी में जुट गये। सभी दलों को मिला कर एक दल बनाने का सवाल उठ खड़ा हुआ कि मोरार जी देसाई अड़ गये। वह नयी पार्टी का अध्यक्ष पद लिये बिना विलय के लिए किसी भी तरह तैयार नहीं थे। चौधरी साहब भी अटल थे। उनका दल सबसे बड़ा दल था। भारतीय लोक दल से ही नयी पार्टी का अध्यक्ष चुना जाना चाहिए। एक गतिरोध उत्पन्न हो गया। बाबू जयप्रकाश नारायण को बीच में डाला गया। चौधरी की "चौधराहट" ने नया तहलका पैदा कर दिया। विलय नहीं हुआ तो सब कुछ मिट जायेगा। मोरार जी और चौधरी साहब की जिदों ने वातावरण को कितना बोझिल बना दिया था। उम्मीद बहुत कम थी फिर भी चौधरी साहब ने एक बार अप्रत्याशित रूप से यह पुनः साबित कर दिया कि पद देश से बड़ा नहीं है, और देश के लिये वह बड़े से बड़ा पद छोड़ सकते हैं—किसी दबाव में या प्रतिद्वन्द्वी से पराजित होकर नहीं बल्कि स्वेच्छा से, अन्तर्मन की प्रेरणा से। उन्होंने मोरार जी को नयी पार्टी (जनता पार्टी) का अध्यक्ष मान लिया—बिल्कुल साफ़ मन से।

प्रधानमन्त्री कौन बनेगा? जनता पार्टी के बहुमत में आने के बाद सबसे अहम् सवाल यही था। क्या चौधरी साहब मानेंगे? वह प्रधानमन्त्री बन कर रहेंगे। बहुमत उनका है ही। जयप्रकाश नारायण जी के सामने इससे बड़ा संकट कोई हो ही नहीं सकता था। पार्टी में टूट-फूट और कटुता को रोकने के लिये सर्वसम्मत चुनाव होना जरूरी था। चौधरी साहब बीमार थे, अस्पताल में पड़े थे। वह चाहते तो प्रधानमन्त्री पद के उम्मीदवार हो सकते थे, हो सकता है जनता पार्टी के सामने उनके उम्मीदवार बनने पर कोई अन्य विकल्प न रहता—पर उन्होंने यह मोह भी त्याग दिया। मोरार जी का नाम उन्होंने स्वयं प्रस्तावित किया। ऐसा भी नहीं कि प्रधानमन्त्री बनने की आकांक्षा ने उनके मन को कचोटा नहीं। बल्कि उन्हें लगा था– कि राजनीति में ऐसा अवसर रोज-रोज नहीं आयेगा। एक झटके में उन्होंने अपने कमजोर मन को वश में कर लिया था। इतना बड़ा मसला इतनी आसानी से सुलझ सकेगा—इसकी किसी को कल्पना तक न थी। जनता पार्टी को बेहतरी और देश को एक सुदृढ़ एवं शंका-मुक्त सरकार देने के लिये उन्होंने अपनी महत्वाकांक्षाओं की बलि चढ़ा दी–बेमिसाल त्याग और राजनीतिक दूरदर्शिता के एक कृतित्व ने उन्हें रातोरात राष्ट्र का सर्वमान्य नेता बना दिया।

चौधरी साहब के जीवन में ऐसे न जाने कितने दौर आये जब उन्हें गलत समझा गया–उनके इर्द-गिर्द रहस्य और शंका की एक धुन्ध इन दिनों भी घिर आयी है। प्रधानमन्त्री के साथ उनके मतभेदों की नित्य गहरी होती गयी खाईं जनता पार्टी के लिये कितनी खतरनाक हो सकती है, इसका अन्दाज किसे नही है। जनता पार्टी के अन्दर एक अजीब-सी उथल-पुथल है। यह सवाल कि 'क्या चौधरी साहब जनता पार्टी तोड़ेंगे'–आम आदमी की जबान पर है। चौधरी साहब की अप्रत्याशित खामोशी पुरानी यादों को ताजा नही करती क्या?

कहना कठिन है कि संविद सरकार के कटु अनुभवों और जनता पार्टी के घटकीय ढांचे से उत्पन्न दुरूहताओं में कितना अन्तर है। यह भी कहना कठिन है कि उन दिनों की घुटन और आज की घुटन का तापमान कितना कम या ज्यादा है; पर आज भी उनका हर आचरण संदिग्ध है।

चौधरी साहब के चाहने वालों ने जब किसान-दिवस के रूप में उनकी ७५ वीं वर्षगाँठ मनाने का निश्चय किया तो विवादों का वही सैलाब फिर नजर आने लगा। जन्म-दिवस मनाना गुनाह होता तो, महात्मा गाँधी से लेकर हेमवती नन्दन बहुगुणा तक का जन्म दिवस क्यों मनाया जाता।' चौधरी साहब की ७५ वीं वर्ष गाँठ ने यह निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया कि वह किसानों के एक मात्र नेता हैं। किसी व्यवस्था और साधनों को जुटाये बिना २० लाख किसानों ने इस ऐतिहासिक जन्म-दिवस के अवसर पर जब उनका अभिनन्दन किया तो एक बार फिर से वही संकट उठ खड़ा हुआ। प्रधानमन्त्री तक अपनी स्वाभाविक प्रतिक्रियाओं को दबाने में असफल रहे। उन्होंने चौधरी साहब के जन्म-दिवस समारोह का अनुमोदन भी नहीं किया, साथ ही अपने प्रभाव का प्रयोग कर उसे महत्त्वहीन बनाने की भी चेष्टा की। बाद में चौधरी साहब के जन्मदिवस के कट्टर आलोचकों ने अपने जन्मदिवस मनाये और मनवाये। राजनीतिक ढोंग और कुटिलता के इस सिलसिले ने पुनः वही विवाद खड़ा कर दिया। 'चौधरी साहब प्रधानमन्त्री बनना चाहते हैं। उन्हें बहुत जल्दी है।' जिन्दगी के इस मोड़ पर वह विवादों से जितना ही बचना चाहते हैं, उनके नेतृत्व और निष्कलुष व्यक्तित्व से भयभीत लोग उतना ही उन्हें उसी दलदल में घसीट ले जाना चाहते हैं।

भय, घृणा, द्वेष और स्वार्थबश उन्हें गुनाहों का देवता बनाया जा रहा है। सहसा लगने लगा है कि जनता पार्टी की आँखों से देश ओझल होता जा रहा है। इस सबकी जिम्मेदारी किस पर है? न जाने कितने सही-गलत आरोप हैं, उन पर। "चौधरी साहब मुसलमानों के कट्टर विरोधी हैं?" "हरिजनों पर अत्याचार उन्हीं के कारण हो रहे है?" "किसानों में भी वह मात्र "कुलक" नेता हैं और बड़े किसानों के पक्षधर?" क्या चौधरी साहब को इन आरोपों का पूर्वानुमान नहीं था? तो फिर वह मौन क्यों है, पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण को लेकर सुलगने वाली चिनगारी को दावानल बनाया जा रहा है, क्यों? विगत ३० वर्षों से जातिवाद को पनपाने वाली काँग्रेस चौधरी साहब पर आरोप लगा रही है कि वह देश को जातीय संघर्ष की आग में झोंक रहे हैं। जातीयता का हिंसक ताण्डव समस्त व्यवस्था को नष्ट करने के लिये आमादा है। आरक्षण का आन्दोलन चाहे बिहार में चले, चाहे उत्तर प्रदेश में– निजी स्वार्थ के घेरे में कसे कुछ राजनयिक नेता नाम उन्हीं का लेते रहते हैं?

कौन नहीं जानता कि विगत लोक-सभा चुनाव में इतनी बड़ी सख्या में जनता पार्टी के संसदीय निकट मुसलमानों को किसने दिये थे? कौन नहीं जानता कि गाँधीवाद के कट्टर अनुयायी चौधरी चरण विचारों और कर्मों से हरिजन-विरोध के प्रतीक कभी नहीं बन सकते हैं। हाँ, यह बात कम लोग जानते होंगे कि उनके चूल्हे-चौके का बन्दोबस्त बीसियों साल तक एक हरिजन द्वारा किया जाता रहा है। जो दर्द उनके मन में उत्पीड़ित हरिजनों के लिये है, वही कसक वह सदियों से आर्थिक-उत्पीड़न के शिकार पिछड़े वर्गों के लिये अनुभव करते हैं। हरिजनों का आरक्षण यदि उचित था, तो आर्थिक पिछड़ेपन की विभीषिका में भुखमरी और बेरोजगारी से बेजार पिछड़े वर्ग का आरक्षण क्या केवल इसलिये अनुचित और असामयिक कदम है, क्योंकि उस पर सिद्धान्ततः चौधरी साहब विश्वास करते आये हैं? चुप्पी इन अन्तर्विरोधों की चिकित्सा नहीं है। समय आ गया है जब उन्हें अपने आदर्शों की रक्षा और निर्धारित लक्ष्यों को पाने की दृष्टि से इन आरोपों की कैद से मुक्त होने के लिये साहसिक कदम उठाने होंगे।

समय की आवश्यकता है कि सारे देश को विभिन्न आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों पर ऐसा मार्ग दर्शन दिया जाये, जो जनता पार्टी को एक सही मूल्यों पर कांग्रेस का 'विकल्प' सिद्ध कर सके और इस सिद्धि के लिए आज समस्त देश चौधरी चरण सिंह की ही ओर आशा भरी दृष्टि से देख रहा है।

लोकतन्त्र, प्रशासन में आस्था : वर्तमान सन्दर्भ

□ वीरेन्द्र त्रिपाठी

देश का जनसाधारण लोकतन्त्र के आधार पर निर्वाचित शासन–व्यवस्था से मुख्यतया स्वच्छ प्रशासन, दैनन्दिन आवश्यक वस्तुओं का उचित मूल्य पर एवं अनवरत संभरण, वाक्, पाठन, भाषण–स्वातंत्र्य और निर्भय रह पाने की अपेक्षा करता है। इनमें से किसी भी क्षेत्र में संतुलन बिगड़ जाने से जनसाधारण समीक्षक का स्वरूप धारण कर लेता और सुलभ संचार, प्रसार, प्रचार-माध्यम और यहाँ तक कि केवल मुख–प्रसारण द्वारा भी अपने विचारों का सम्प्रेषण करने लगता है। आमने–सामने के सम्प्रेषण पर प्रतिबन्ध की कारगरता किसी भी प्रकार की शासन–व्यवस्था में सम्भव नहीं। अलबत्ता संचार के अन्य साधनों पर कानून अथवा फतवे द्वारा अंकुश लगाया जा सकता है, जैसा कि हमारे देश में आपातकालीन स्थिति की घोषणा और उसके बाद के समय में हुआ था।

बहरहाल, प्रशासन के मुख्य उत्तरदायित्वों के निर्वाह में जनसाधारण की भूमिका उसका सहयोग होती है और सहयोग प्राप्त होता है प्रशासन–व्यवस्था में विश्वास होने से। इस प्रकार प्रशासन–व्यवस्था की सबसे बड़ी चुनौती होती है जनसाधारण का विश्वास अर्जित किये रहना और उसे दृढ़ से दृढ़तर करते जाना।

देश के केन्द्र और कुछ राज्यों में सत्तासीन पार्टी जनता पार्टी के सामने सैद्धान्तिक रूप से वही समस्यायें हैं जो किसी सत्ताधारी राजनीतिक पार्टी के सामने होती हैं। हमारे देश में तीस वर्ष से अधिक अवधि तक से लोकतन्त्र व्यवस्था चली आ रही है, लेकिन लोकतन्त्रीय मानसिकता अभी तक नहीं बन पायी है। विरोधी पक्ष विरोध करता आया है और शासक पक्ष शासन। दोनों में सहयोग की मात्रा न्यूनतम ही रही है। उसका प्रमुख कारण विचारधारात्मक मतभेद रहा है। देश के धरातल पर, देश की बहबूदी के लिए सोचने का दावा करने वालों के नुस्खे अलग–अलग रहे। किसी को केवल गाँव की उन्नति में देश की भलाई लगी, किसी को गाँव और शहर दोनों की उन्नति में अर्थात् कृषि में भी प्रगति हो तथा बड़े उद्योग धंधे भी पनपाये जायें। किसी ने पूर्ण समाजवाद में देश का भला सोचा तो किसी ने हिंसक क्रांति से आमूल–परिवर्तन का नारा बुलन्द किया। देश के आर्थिक सम्बन्धों में अपने–अपने ढंग से परिवर्तन चाहते हुए भी जनसाधारण के जीवन को सरल, सुगम और खुशहाल बनाने की इच्छा सबने प्रकट की।

इन सब परिवर्तनों के लिए सभी के पास तैयारशुदा आदर्श नमूने भी थे। ये नमूने उन्होंने प्रस्तुत भी किये। कुछेक को वे नमूने पसन्द नहीं आये, उन्होंने राष्ट्रवाद के नये परिवेश में सामाजिक क्रांति, सामाजिक पुनर्निर्माण आदि का ब्लूप्रिन्ट तैयार किया। एकता और एक राष्ट्रवाद का अहंकार उद्घोषित किया। स्वतंत्रता के बाद सत्तासीन हुए राजनीतिक नेताओं ने मध्यमार्ग चुना। उन्होंने भारी आधार उद्योगों पर बल दिया और सिद्धान्ततः कृषि की तरक्की पर भी बल देते रहे, लेकिन वे प्राथमिकताओं में उलझ गये। देश के औद्योगीकरण में सबसे अधिक बल विद्युतीकरण के उपभोक्ता माल तैयार करने वाले पक्ष को मिल गया—ट्रांजिस्टर-

युग हावी हो गया; नलकूप, जलकूप पिछड़ गये। अर्थात् विकास का क्रम उलट-पुलट गया। जनसाधारण की आवश्यक जरूरतें पृष्ठभूमि में चली गयीं, मध्यमवर्ग के लिए प्रतिष्ठा वाली चीजों के उत्पादन की भरमार हो गयी। गाँव गिर गये, नगर तन गये।

इसी बीच राजनीतिक अस्थिरता, विदेशी आक्रमण, प्रत्याक्रमण आदि के प्रकरण भी घटित हुए। राजनीतिक आपाधापी और विधायकों की टूट-फूट का दौर चला। इन सबके राजनीतिक नैतिकता के मूल्यों का ह्रास हुआ, जिसका सबसे बड़ा आघात पूर्ववर्त्ती सरकार को सत्ताच्युत होकर सहना पड़ा। काँग्रेस की तीस वर्षों की इजारेदारी टूटी। ऐसा कहना समीचीन नहीं क्योंकि यह इजारेदारी सन् १९६७ में ही टूट चुकी थी, जब कई राज्यो में सविद सरकारें और दो राज्यों में वामपंथी मोर्चे की सरकारे सत्तासीन हुई थीं। उन सरकारो को जनता का विश्वास अर्जित करने में कठिनायी हुयी, इसलिए कोपभाजन होना पड़ा।

फिर शासकवर्ग में फूट पड़ी, शासकवर्ग के उस पक्ष को जनता ने अपना विश्वास प्रदान किया, जिसने जनहित के नारे दिये और नारों की प्रामाणिकता के लिए कुछ अमली कदम भी उठाये। एक छत्र विश्वास प्राप्त हो जाने का मद क्या होता है, इसके परिणाम धीर-धीरे सामने आने लगे। शासक वर्ग में अहम्मन्यता आने लगी। विचार-विमर्श की प्रक्रिया लुप्त होने लगी, आदेश की राजनीति सर्वोपरि हो गयी। आदेशात्मक राजनीति का ही कुफल आपात्कालीन स्थिति बनी। यहाँ, यह कह देना प्रासंगिक होगा कि आदेशात्मक राजनीति की प्रतिष्ठा में विरोधी पक्ष के एक वर्ग का गहरा हाथ रहा है और इसे नकारना दूसरे प्रकार की आदेशात्मक राजनीति का समर्थन करना होगा।

आज शासन की गद्दी पर बैठकर जनता पार्टी के नेताओं को पता चल रहा है कि जब विरोधी पक्ष विरोध करने के लिए नानाप्रकार के आन्दोलन, घेराव आदि करता है और प्रशासन को हिंसा अपनाने पर बाध्य करता है तो प्रशासन की अपनी नीति क्या होती है और क्या होनी चाहिए। जनता पार्टी के सामने यह बहुत बड़ी चुनौती है कि वह प्रस्तुत समस्याओं का समाधान किस तरह करे कि जनसाधारण की सहानुभूति उसके साथ बनी रहे और वह अल्प संख्यकों, हरिजनों, बेरोजगारों आदि को धीरज बँधाये रहे, उनका विश्वास जीते रहे। इसीलिए जनता पार्टी के शुभचिन्तकों के सामने यह प्रश्न महत्वपूर्ण होता जा रहा है कि पार्टी की विश्वसनीयता को जनसाधारण में किस प्रकार पुनर्स्थापित किया जाये। सन् १९७७ के आमचुनावों में जनता पार्टी ने जिस व्यापक रूप से जनसाधारण का विश्वास अर्जित किया था और कुछ समय बाद हुए नौ विधान सभाओं के चुनावों में उस विश्वास को जनसाधारण ने पुनः व्यक्त किया था, उसका स्वरूप अब डगमगा रहा है।

इसका प्रमुख कारण दैनन्दिन जीवन में उत्पन्न कठिनाइयाँ, प्रशासनिक अव्यवस्था और अराजकता है। देश का साधारण नागरिक यह नहीं देखता कि जनता पार्टी की सरकार अभी डेढ़ वर्ष की भी नहीं है। उसके सामने क्या कठिनाइयाँ हैं। वह तो अपनी कठिनायी देखता है, उसे जो महसूस होता है प्रतिक्रिया स्वरूप उसे ही व्यक्त करता है, ऐसी स्थिति में प्रशासन का क्या कर्त्तव्य है उसकी दृष्टि इसी पर रहती है। प्रशासन असफल क्यों हो रहा है, क्या इसमें जनसाधारण की भी कोई भूमिका है, इस पर विचार करने का न तो जनसाधारण के पास अवकाश है और न ही उसकी रुचि इसमें हैं। ऐसी स्थिति में देश के बौद्धिक वर्ग और मत-सम्मत निर्माताओं का उत्तरदायित्व विशेष रूप से बढ़ जाता है। जनता पार्टी के समर्थकों का यह कर्त्तव्य है कि वे जनसाधारण के दुःख-दर्द के बाँटने वाले बनें। प्रशासन की ढीलों को सुदृढ़ बनाने में योगदान करें और लोकतन्त्र को कार्यक्षम बनायें। बिना जनसाधारण के सक्रिय सहयोग के लोकतन्त्र व्यावहारिक नहीं हो पायेगा। लोकतन्त्र को व्यावहारिक बनाने के लिए जनसाधारण का विश्वास और सहयोग अर्जित करना किसी भी प्रशासन के लिए अनिवार्य है—जनता पार्टी के लिए तो और भी क्योंकि इसमें शामिल पाँच पार्टियाँ देश की अनेक समस्याओं के समाधान मे अलग-अलग विचार रखती आयी हैं।

जनता पार्टी के सामने सबसे बड़ी चुनौती विभिन्न घटकों की एकता है और इसीलिये जनता पार्टी का सर्वोपरि कर्त्तव्य पार्टी को टूटने न देने की सन्नद्धता होना चाहिए। अलबत्ता सभी घटक यह चाहते हैं और कहते भी हैं कि पार्टी टूटेगी नहीं, लेकिन जिस प्रकार के घटनाक्रम देखने को मिल रहे हैं,

उनसे जनता के मन में विश्वास के स्थान पर अविश्वास ही उत्पन्न हो रहा है। इसी अविश्वास के कारण निराशा उत्पन्न होती है। प्रशासनिक शिथिलतायें इस निराशा को और उद्वेग प्रदान करती हैं। परिणाम यह हो रहा है कि जनता पार्टी के शुभचिन्तक भी दिग्भ्रमित हो उठे हैं।

कल जो नये विहान के आगमन की मुक्तकंठ से प्रशंसा कर रहे थे, आज उनके कंठ उतने मुखर और उतने मुक्त नहीं। डेढ़ वर्ष में ही अपने को टटोलने की स्थिति उत्पन्न हो गयी, यह कुछ कम निराशाजनक बात नहीं। जिन समस्याओं को हल करने का वादा किसी भी सरकार की ओर से अपेक्षित रहता है उनकी ओर जनता पार्टी जागरूक न हो यह नहीं कहा जा सकता, लेकिन उसका प्रमुख प्रहार नकारात्मक प्रतिक्रियायें उत्पन्न कर रहा है, ऐसा क्यों है? बुद्धिजीवी वर्ग तो अपने विचार प्रकट करने के लिए स्वतन्त्र हो गया है, लेकिन जनसाधारण भी क्या उतना ही स्वतंत्र है और क्या उसके स्वतंत्र होने अथवा रह पाने की प्रक्रिया को निरापद बना दिया गया है?

दरसल जनता पार्टी के सामने वे सब चुनौतियाँ विद्यमान हैं, जो पूर्ववर्त्ती सरकार के सामने थीं और जिनका हल उस सरकार ने आपातकालीन स्थिति की घोषणा करके करना चाहा था, लेकिन उसकी मुख्य दिशा का प्रवाह किसी दूसरी ओर ही कर दिया गया। फलस्वरूप देश के लोकतंत्र से विचलन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी और नौकरशाही एवं पुलिस का राज व्याप्त हो गया। नीतियों की तामील में मानवता का स्थान लुप्त हो गया, नृशंसता सिर पर चढ़कर बोलने लगी। जनता की बेदारी को उजागर करने में बुद्धिजावियों और कुछ सीमा तक भूमिगत आन्दोलन ने विशिष्ट भूमिका अदा की। इसीलिए आमचुनाव के परिणामों को देखकर जनसाधारण को सुखद आश्चर्य हुआ। सुखद आश्चर्य के बाद सत्तासीन होने से पूर्व घटक नेताओं के बीच प्रधान मन्त्री पद और मन्त्रिमण्डल के गठन पर मनमुटाव उत्पन्न हुआ जानकर जनता को पहला धक्का लगा। फिर कुछ लीपापोती के बाद केन्द्रीय सरकार स्थापित हुयी। नानाजीदेशमुख ने स्वयं मन्त्रिपद अस्वीकार करके अपनी पार्टी के अप्रसिद्ध ब्रजलाल वर्मा को अपने स्थान पर मन्त्रिमण्डल में लिये जाने का अनुरोध किया और वे ले लिये गये। मन्त्रिमण्डल के कार्यरत होने के कुछ ही समय बाद से समाचारपत्रों में मतभेद, मानापमान आदि गैर आदर्शवादी फज़ीहतों के समाचार प्रकाशित होने लगे। लोगों को लगा कमोबेश ये लोग कुछ नये इन्सान नहीं। वही पुराने, चिरपरिचित हैं। अलबत्ता, पहिचान का भौतिक रूप बदल गया है।

बदलाव की राजनीति के पैरोकार जनता पार्टी की कछुआ चाल से सशंकित हो गये और उस शंका की अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों और विभिन्न माध्यमों द्वारा दृष्टिगोचर होने लगी। जनता पार्टी को जनसाधारण की हमदर्दी न मिले रहने के क्या कारण हैं। इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर यह स्पष्ट हो जायेगा कि इस पार्टी के कट्टर हमदर्द वही बचे हैं, जिन्होंने स्वयं अथवा जिनके सम्बन्धियों ने आपात्काल में कुछ यातना भोगी। बाकी के लोग दलगत राजनीति के कारण दल विशेष के तो हमदर्द हैं, सम्पूर्ण जनता पार्टी के नहीं।

पार्टी का नाम एक हो जाने के बावजूद केन्द्र, राज्य, शहर, जिले और मण्डल स्तर पर जनता पार्टी का सगठनात्मक ढाँचा उतना चुस्त नही बन पाया, जितना एक ऐसी राजनीतिक पार्टी का होना चाहिए, जिसके हाथ में राजसत्ता हो। संगठन और सरकार में समन्वय भी नहीं स्थापित हो पाया—जो गलती काँग्रेस ने अपने शासन में की यानी कोई सुदृढ़ सगठन जिसकी नीतियाँ सरकार को प्रभावित कर सकतीं, कभी नही बना और आज भी कमोबेश वैसी ही स्थिति है। जब तक संगठन की एकरूपता नही होती—पुराने घटकों की एकरसता भी सम्भव नहीं है और यदि अलग-अलग घटकवाद चलता रहा तो जनता का विश्वास डिग सकता है। देश एक नाजुक दौर से गुजर रहा है—काँग्रेस की नीतियों को जनता ठुकरा चुकी है और यदि जनता पार्टी नयी दिशा नही दे पायी और पुराने रंग-ढंग पर ही चली तो वे सपने कैसे पूरे होंगे, जो देश की करोड़ों जनता ने सँजो रखे हैं।

दलगत पहचान बनाये रखने की प्रवृत्ति ही जनता पार्टी के लिए अहित का कारण बनी हुई है। संगम जब वास्तविक अर्थों में संगम बनेगा, देश के भाग्य का उदय होगा। जनता को अपना स्वप्न और सत्ता को सच्चा विश्वास प्राप्त होगा।

विलय की व्यथा-कथा

□ बीजू पटनायक
इस्पात-खान मन्त्री, भारत सरकार

जितने पूर्वाग्रहों, संकोचों, हिचकचाहटों तथा जानी-अनजानी भयंकर प्रसव-पीड़ाओं को भोगने के बाद जनता पार्टी का जन्म सम्भव हुआ था, विलय की उन समस्त प्रतिक्रियाओं की जब-जब याद आती है, तो अनायास ही मेरा मन चौधरी चरणसिंह जी के प्रति आदर, श्रद्धा एवं उपकार की भावना से जुड़ जाता है। विभिन्न राजनीतिक दलों के परस्पर विलय की व्यथा-कथा इतने नाज़ुक दौरों से होकर गुजरी है कि जिसे सोचकर अब तक मेरा रोम-रोम सिहर उठता है। यदि चौधरी साहब काँग्रेस के विकल्प की सिद्धि के प्रति इतना समर्पित, भावुक और प्रतिबद्ध नहीं होते, तो देश क्या तानाशाही के शिकंजे से इतनी जल्दी मुक्ति पा सकता था ?

डा० लोहिया ने बहुत पहले कहा था कि काँग्रेस अल्पमत की सरकार है। उनका यह स्पष्ट मत था कि काँग्रेस चालीस प्रतिशत या उससे कम मतों के बल बूते पर देश की शासक बनी हुयी है जबकि बहुमत विरोधी दलों के साथ है। राजनीतिक दलों के बँटे होने के कारण मतों के दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन की ही परिणति से काँग्रेस सरकार का अस्तित्व बरकरार है। यदि मतों का यह बँटवारा रुक जाये और विरोधी दल मिल-जुलकर ऐसी रणनीति तैयार कर लें जिससे काँग्रेस के विरुद्ध पड़ने वाला एक-एक मत किसी एक ही विरोधी दल के पक्ष में जाये, तो काँग्रेस कभी भी सरकार नहीं बना सकेगी। सन् १९६७ में काँग्रेस-विरोधी मोर्चे का गठन डा० लोहिया ने इसी मन्तव्य को कसौटी पर कसने के उद्देश्य से किया था। इतिहास प्रमाणित करता है कि पहलीबार सन् १९६७ में आठ प्रदेशों में काँग्रेस की सरकारें नहीं बन सकी थीं। डा० लोहिया के विरोध का दर्शन सिद्ध था और उन्हीं की प्रेरणा से विरोधी-दलों ने पहलीबार मिल जुलकर काँग्रेस के विरुद्ध काम करना शुरू किया था।

मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि डा० लोहिया की इस 'थीसिस' को चौधरी चरणसिंह ने और आगे बढ़ाने का संकल्प काँग्रेस छोड़ने के साथ ही ले लिया था। संविद सरकारों के कटु-अनुभवों ने उन्हें बहुत कुछ सिखाया, बल्कि एक ऐसी कभी न बुझने वाली प्रेरणा का दीप जलाया कि वह देश में काँग्रेस के विकल्प की खोज में तन-मन-धन से जुट गये। भारतीय क्रान्ति दल ने जिस दिन भारतीय लोकदल का रूप धारण किया था उसी दिन काँग्रेस के विकल्प का बीजारोपण हुआ था। उत्कल काँग्रेस, स्वतन्त्र पार्टी, संसोपा (राजनारायण गुट) आदि दलों के विलय ने भारतीय क्रान्ति दल को भारतीय लोकदल का अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान किया और उसके बाद से जनता पार्टी के जन्म तक चौधरी साहब इसी विकल्प की खोज में लगे रहे। राजनीतिक अनुसन्धान की यह प्रक्रिया कितनी प्रयोगशालाओं से होकर गुजरी यह अब रहस्य की बात नहीं रह गयी है, किन्तु यह बात सफलता से उत्पन्न 'अहम् ब्रह्मास्मि' के शोर-गुल मे अवश्य दब गयी कि चौधरी साहब ने जनता पार्टी के गठन के लिए अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया था। ८ जुलाई सन् १९७६ को चौधरी साहब ने दिशा-निर्देशन समिति के सयोजक श्री एन० जी० गोरे के नाम एक पत्र में लिखा था—

'मैं यह बात दोहराना चाहता हूँ कि समय का बहुत महत्त्व है। हालाँकि मैं यह जानता हूँ कि कुछ दलों के लोग मेरे इस तरह जोर डालने से नये दल के निर्माण को मेरा निजी स्वार्थ समझते हैं। आप उन्हें यह विश्वास दिला सकते हैं कि किसी भी दशा में मैं नये दल का नेतृत्व स्वीकार नहीं करूँगा। जैसे ही नये दल का गठन हो जायेगा, यदि मैं अपने को राजनीतिक नेता होने के गुणों के योग्य नहीं पाऊँगा, तो राजनीति से सदा के लिए सन्यास ले लूँगा..... .....प्रजातन्त्र की सफलता के लिए काँग्रेस के विरुद्ध प्रजातान्त्रिक विकल्प ढूँढ़ा जाना अत्यावश्यक है।'

बम्बई में सन् १९७६ के मार्च–अप्रैल में श्री एन० जी० गोरे के संयोजकत्व में एक दिशा-निर्देशन समिति का गठन किया गया, जिसे प्रजातान्त्रिक विपक्ष संगठित करने के लिए नीति-निर्धारण करना था। इस समिति के अन्य सदस्य श्री एच० एम० पटेल, श्री शान्ति भूषण और श्री ओ० पी० त्यागी थे। भारतीय लोकदल पहला विरोधी दल था जिसने सबसे पहले चार-पाँच अप्रैल को अपनी राष्ट्रीय कार्यकारिणी द्वारा काँग्रेस का विकल्प बनाने की प्रक्रिया का अनुमोदन किया और अनेक रचनात्मक सुझाव देते हुए ९ अप्रैल के पत्र द्वारा कार्यकारिणी के प्रस्ताव से श्री गोरे को अवगत भी करा दिया। सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की न तो बैठक हुयी और न ही दलों के विलय के विषय में कोई अन्य कार्यवाही ही की गयी। संगठन काँग्रेस ने भी बम्बई के प्रस्ताव को गम्भीरता से नहीं लिया। प्रस्ताव के पचास दिन बाद आठ-नौ मई को उनकी राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक हुयी और उसने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त करने के बजाय अपनी प्रादेशिक इकाइयों से सलाह लेने का निश्चय भर किया।

विलय की प्रक्रिया में सर्वाधिक कठिनाइयाँ संगठन काँग्रेस के कारण पैदा हुयीं। समाचारपत्रों में विभिन्न प्रदेश इकाइयों द्वारा विलय के विरोध की खबरें छपने लगीं। डा० प्रताप चन्द्र चुन्दर का यह स्पष्ट बयान छपा कि पश्चिम बंगाल इकाई अपने अस्तित्व को समाप्त करने के विरुद्ध है। गुजरात संगठन काँग्रेस तक ने विलय का विरोध किया था। मुख्यमन्त्री श्री बाबू भाई पटेल तथा वरिष्ठ नेता श्री मनुभाई शाह ने समाचारपत्रों के माध्यम से यह स्पष्ट कर दिया कि गुजरात संगठन काँग्रेस, जनता मोर्चे के ढाँचे में ही काम करना पसन्द करेगी और किसी भी दशा में संगठन काँग्रेस अपना अस्तित्व समाप्त करने के लिए तैयार नहीं है।

जनसंघ की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक १६-१७ मई सन् १९७६ को हुयी, जिसमें उपस्थित सदस्यों का स्पष्ट मत था कि राष्ट्रीय विकल्प के निर्माण के लिए सभी प्रजातान्त्रिक दलों को मिल जाना चाहिए, किन्तु चूँकि कार्यकारिणी के तीस सदस्य तथा स्वयं अध्यक्ष जेल में हैं, इसलिये कोई अन्तिम निर्णय नहीं लिया जा सकता।

जब अन्ततः २२-२३ मई को चारों दलों के नेता बम्बई में मिले, तो एक बहुत ही चौंकाने वाली घटना घटी। भारतीय क्रान्ति दल ने राष्ट्रीय विकल्प के लिए जो मसौदा दिशा-निर्देशन-समिति को भेजा था इस बैठक में उस पर विचार तक नहीं किया गया, फिर भी भारतीय लोकदल के नेताओं ने यह आश्वासन दिया कि यदि चारों दलों का विलय होता है, तो भारतीय लोकदल अपने अस्तित्व को समाप्त करेगा। २६ मई सन् १९७६ को श्री जयप्रकाश जी ने नये राष्ट्रीय दल की प्रस्तावना की, जिसमें संगठन काँग्रेस, भारतीय लोकदल, जनसघ और सोशलिस्ट दल शामिल किये गये थे। यह भी तय किया गया कि जून के अन्तिम सप्ताह में विरोधी दलों का एक सम्मेलन होगा, जिसमें लगभग दो सौ व्यक्ति भाग लेंगे। नये दल के औपचारिक गठन के बाद चारो विरोधी दलों को अपना स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त करना था, जबकि कटु-सत्य यह था कि भारतीय लोकदल के अलावा किसी भी अन्य दल की कार्यकारिणी ने तब तक विलय का प्रस्ताव विधिवत् पारित नहीं किया था। स्पष्ट है कि भारतीय लोकदल के अलावा अन्य दलों के मन तब तक साफ नहीं थे और पूर्ण-विलय के सिद्धान्त में उन्होंने अपना विश्वास व्यक्त नहीं किया था। उस समय यह सन्देह भी स्वाभाविक था कि यह दल बुनियादी तौर पर काँग्रेस विरोधी मोर्चा बनाने तक ही सीमित रहना चाहते हैं और सबसे दुर्भाग्यपूर्ण बात यह थी कि श्री जयप्रकाश नारायण इन गतिविधियों से पूर्ण-रूपेण अनभिज्ञ लगते थे। बाद में उन्होंने यह स्वीकार भी किया कि बम्बई में लिये गये निर्णय में जल्दबाजी हुयी थी।

चौधरी चरण सिंह किसी भी तरह मोर्चे की राजनीति से सहमत नहीं थे। उन्होंने एक नहीं अनेक बार यह स्पष्ट कहा कि यदि विरोधी दल अपना अस्तित्व समाप्त नहीं करते और समस्त राजनीतिक पूर्वाग्रहों को तिलाञ्जलि देकर राष्ट्रीय विकल्प के रूप में इसका गठन नहीं किया जाता तो नये दल के निर्माण का उद्देश्य ही विफल हो जायेगा। भारतीय लोक दल की कार्यकारिणी ने ३०-३१ मई को पुनः एक प्रस्ताव पारित करके श्री जय प्रकाश नारायण से अपील की कि संघठन काँग्रेस, जनसंघ और सोशलिस्ट पार्टी पर अपना अस्तित्व समाप्त करने का दबाव डालें और यह भी कहा कि अब प्रबन्ध समिति की बैठक तभी बुलायी जाये जब तीनों दल नये दल में विलय का निर्णय करलें।

भारतीय लोकदल जिन दिनों राष्ट्रीय विकल्प के निर्माण के लिए प्रयत्नशील था, उन्हीं दिनों पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, बिहार, असम आदि प्रदेशों की संगठन काँग्रेस इकाइयाँ विलय के विरोध का प्रस्ताव पारित कर रही थीं।

चौधरी साहब और भारतीय लोक दल के अन्य शीर्ष नेताओं ने सन् १९७४ से आपातकाल लागू होने तक संघठन कांग्रेस, जनसघ और समाजवादी दलों को मिलाकर एक पार्टी बनाने का अनवरत प्रयास किया। भारतीय लोक दल अपना अस्तित्व समाप्त करने के लिए तैयार था– नाम झण्डा, चुनाव चिन्ह–कुछ भी छोड़ने में उसे सकोच नहीं था, किन्तु इन दलों के नेताओं ने सदा एक ऐसे मोर्चे या संघीय दल की बात सामने रखी, जो उनके स्वतन्त्र अस्तित्व को कायम रखने में सहायक हो। भारतीय लोकदल ने जयप्रकाश जी से भी यह प्रार्थना की कि वे या तो भालोद का नेतृत्व स्वीकार करें या फिर एक ऐसे दल का गठन करें जिसमें प्रजातन्त्र पर विश्वास करने वाले सभी विपक्षी दल मिलाये जा सकें। दल-विहीन प्रजातन्त्र या समग्र क्रान्ति में निष्ठा के कारण उन्होंने इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया, इसके विपरीत उन्होंने भालोद को सघीय पार्टी में शामिल होने की सलाह देकर एक तरह से मोर्चावाद का ही अनुमोदन किया। जब गुजरात विधान सभा के चुनावों में जनता मोर्चा प्रायः ध्वस्त हो गया, तब अन्ततः भारतीय लोकदल की भावना के अनुरूप एक संगठित दल के निर्माण करने का वातावरण बना। यह सब करने में लगभग दो वर्ष का समय बरबाद हुआ इससे यह स्पष्ट है कि राजनीतिक ध्रुवीकरण के सिद्धान्त को जन्म देने का कार्य भारतीय लोकदल ने ही किया। विभिन्न दल आपात्स्थिति से उत्पन्न भयावह वातावरण से उद्वेलित दिशा-भ्रम में फँसे हुए थे। तानाशाही की निरंकुशता ने दलों को बिखराव और भटकाव की स्थिति में फेंक दिया था। जेल के बाहर और जेल के भीतर लोकतन्त्र के चिर-उपासक व्यक्तियों को कठोरतम यातनायें दी जा रही थीं। देश के जां-निसारों को बर्बरता का शिकार होते देख कुछ विरोधी गुट और नेता येन-केन प्रकारेण अपने कार्यकर्त्ताओं को दुर्धर्ष यातनाओं से बचाने की भूमिका में लगे थे। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से प्रतिबन्ध हटाये जाने की माँग की जा रही थी। जनसंघ के वरिष्ठ नेता जेल में बन्द थे। जयप्रकाश जी को क्षीण-शक्ति मानकर बाहर फेंक दिया गया था। किसे पता था कि वह मरणासन्न समझकर तिरस्कृत किया गया व्यक्ति लोकनायक बनकर सम्पूर्ण भारत को प्रकाश देने में सक्षम होगा। देह से पूर्णतः अशक्त होते हुए भी जयप्रकाश जी तानाशाही के विरुद्ध आन्दोलन तेज करने की आवाज उठा रहे थे। साथ ही वह तानाशाह काँग्रेस के विरुद्ध लोकतन्त्रीय प्रणाली में अडिग विश्वास रखने वाले नये दल की कल्पना में भी डूबे थे।

चौधरी साहब जो समय की नाड़ी सही ढंग से देखना जानते हैं, भटकाव की स्थिति से परे रहकर केवल एक ही स्वप्न देख रहे थे—नवीन दल का उदय, अन्यथा कुछ नहीं। चौधरी साहब ने अपने संकल्पों एवं तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर जयप्रकाशजी से कहा कि विकल्प का निर्माण और आन्दोलन दोनों साथ नहीं चल सकते। हमारी सारी शक्ति राष्ट्रीय-विकल्प के निर्माण में लगनी चाहिए। ८ जुलाई, सन् १९७६ को दिल्ली में एक बैठक हुयी, जिसमें चौधरी चरणसिंह, भानुप्रताप सिंह, ब्रह्मदत्त, अशोक मेहता, मनुभाई पटेल, एन० जी० गोरे, ओ० पी० त्यागी और सत्य प्रकाश ने हिस्सा लिया। चौधरी चरणसिंह ने इस बैठक में स्पष्ट रूप से कहा था कि नये दल में वही कार्य-कर्त्ता शामिल होंगे जो किसी अन्य दल से सम्बद्ध न हों। किसी भी दशा में दोहरी सदस्यता मान्य नहीं होगी। उस समय भी त्यागी ने इस बात को स्वीकार किया और कहा कि संघ पर प्रतिबन्ध

लगा है और अब उसका कोई अस्तित्व नहीं है। इस बैठक में कोई निर्णय नहीं हो सका। गतिरोध का कारण यह था कि भारतीय लोकदल को छोड़कर अन्य कोई दल विलय के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं था। जनसंघ और सोशलिस्ट दल जेल से नेताओं के रिहा होने तक कुछ भी निर्णय करने में अक्षम थे जबकि चौधरी साहब तब भी यह कह रहे थे कि नेताओं की लिखित राय जेलों से ली जा सकती है और विलय की प्रक्रिया को बढ़ाया जा सकता है। संघठन काँग्रेस भी हिचकिचा रहा था, उसके नेताओं को डर था कि कहीं विलय की बात से उनका दल बिखर न जाय।

विपक्षी दल जब काँग्रेस के विकल्प के रूप में देश के सामने एक जुट होकर एक राष्ट्रीय दल बनाने का प्रयास कर रहे थे तब श्रीमती इन्दिरा गाँधी और उनकी चाण्डाल-चौकड़ी चुप नहीं बैठी थी, उनके सामने भारतीय लोकदल का ही हौवा सबसे बड़ा खतरा था। अतः भारतीय लोकदल में फूट डालने का प्रयास और चौधरी साहब के चरित्र को धूमिल करने के लिए उन्होंने प्रचार शुरू कर दिया कि भारतीय लोकदल का काँग्रेस में विलय करने और उत्तर प्रदेश का मुख्य मंत्रित्व स्वीकार करने के लिए श्री चरणसिंह राजी हो रहे है और इस विषय पर श्रीमती गाँधी के साथ उनकी वार्ताएँ चल रही हैं। इस झूठे प्रचार का जो उत्तर चौधरी साहब ने उत्तर प्रदेश विधान सभा में दिया, वह इतिहास बन गया।

श्रीमती इन्दिरा गाँधी किसी भी दशा में न तो सत्ता का मोह त्यागना चाहती थीं और न विपक्षी दलों को एकजुट होने देना चाहती थीं। आकर्षक नारों और भाषणों की लफ्फाजी के जरिये जनता को मोह-पाश में बाँध रखने की कला जब चुक गयी तब आपात्-स्थिति ही उनके उद्देश्य की पूर्ति के लिए रामबाण थी। विपक्ष के टूटे-बिखरे रहने में ही उनका कल्याण था। उनके जिन देशी-विदेशी सलाहकारों और विवेकहीन बहुमत ने उन्हें संवैधानिक अतिवाद का आत्मघाती निर्णय लेने के लिए मजबूर किया था, उनके मन्सूबे यह थे कि विपक्ष के नेताओं को धीरे-धीरे छोड़ा जाय और शीघ्रातिशीघ्र आपात-कालीन-स्थिति में ही चुनाव करा लिये जायें।

इस बीच श्रीमती गाँधी ने एक चाल और चली। उन्होंने जनता के सामने विपक्ष को हिंसावादी बताते हुए विपक्ष से अपनी मंशा प्रकट करने की माँग की, जिसका उत्तर देते हुए चौधरी चरणसिंह ने कहा कि यदि प्रधानमन्त्री जनता तथा समाचार पत्रों की स्वाधीनता तथा न्यायिक पुनर्विचार की पद्धति को पुनर्स्थापित करने के लिए तैयार हैं और यदि उनकी दिलचस्पी लोकतन्त्र को फिर से पटरी पर चढ़ाने की है, तो उन्हें बात करने की पहल करनी चाहिए, लेकिन यह बातचीत आपातस्थिति के जारी रहते, शक्ति के घृणित और निरंकुश दुरुपयोग के द्वारा सम्पूर्ण देश में आतंक की सृष्टि किये जाने, संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों और और स्वतन्त्रताओं से वंचित रखने की इच्छा के रहते हुए सम्भव नही है।

जनवरी १९७७ में आम चुनाव की घोषणा होते ही सभी विपक्षी दल सकते की-सी हालत में आ गये थे। वह समझ रहे थे कि आपातस्थिति के लागू रहते निष्पक्ष चुनाव सम्भव नहीं होगे। इसलिए क्रान्तिदल को छोड़कर प्रायः सभी दलो के नेता चुनावों का बहिष्कार करने के पक्ष में थे। धीरे-धीरे यह धुन्ध छटी। एक दल बनाने में चौधरी साहब की सदाशयता पर विश्वास जमा। चरणसिंह जी ने स्पष्ट चेतावनी दी कि यदि इस अवसर से लाभ नहीं उठाया गया और संघर्ष से भयभीत होकर मैदान छोड़ दिया गया, तो इस देश से सदा-सर्वदा के लिए लोकतन्त्र तिरोहित हो जायेगा। अन्ततः सभी दलों के विलय का जो मसौदा भारतीय लोकदल ने बनाया था उसी को श्री जयप्रकाश जी ने मान्यता दी। नये दल के गठन में आगे आने वाली सम्भावित कठिनाइयों को हल करने का दायित्व भी जयप्रकाश जी पर छोड़ दिया गया। नये दल के नेतृत्व का प्रश्न बड़ा टेढ़ा था; किन्तु चौधरी साहब ने यह कहकर कि उन्हें नेतृत्व नहीं चाहिए न केवल उसे सरल बना दिया, बल्कि यह भी सिद्ध कर दिया कि देश को तानाशाही से बचाने के लिए और लोकतन्त्र की पुनः प्रतिष्ठा के लिए वह कोई भी कुर्बानी दे सकते हैं। उनके मन-मस्तिष्क में एक ही प्राथमिकता थी—काँग्रेस का राष्ट्रीय विकल्प—लोकतन्त्र में आस्था रखने वाले विपक्ष के सभी दलों का परस्पर विलय। अन्त में वही सब हुआ और चौधरी साहब की कल्पनाओं के अनुरूप जनता पार्टी का जन्म हुआ।

باوجود اصرار اور دباؤ کے نہیں لیا۔

اسکے برخلاف اُنہوں نے انوار صاحب کو وزارت میں شامل کیا۔ اور اُنہیں نسبتاً اچھا قلم دان بھی دیا۔ حالانکہ انوار صاحب کی شکایت کی گئی تھی، مگر اُنہوں نے ایک سابق مسلمان وزیر کو معاف کر دیا۔ لیکن پانچ سابق ہندو وزراء کو دوبارہ وزارت میں شامل نہیں کیا۔

جیسا کہ میں نے کہا ایک سچے گاندھی وادی کے بطور اُنہوں نے فرقہ واریت سے ہمیشہ کیلئے اپنا رشتہ توڑ لیا ہے۔

وہ کسی مسئلہ کو نہ ہندو مسلم نقطۂ نظر سے سوچتے ہیں، نہ کسی مخصوص نسل و ذات کے مفاد کو سامنے رکھ کر کوئی فیصلہ کرتے ہیں، مجھے اچھی طرح یاد ہے کہ جب پہلی بار ایس وی ڈی حکومت چودھری صاحب کی قیادت میں ہی تو اُن کے کچھ مخالفوں نے بحیثیت وزیر اعلیٰ اُنپر جاٹوں کیساتھ خصوصی مراعات برتنے اور صوبہ کی مختلف ملازمتوں بالخصوص پولیس میں زیادہ سے زیادہ جاٹ برادری کے لوگوں کو بھرتی کرنے کے الزامات عائد کئے۔

جب بات بڑھی تو چودھری صاحب نے اعداد و شمار پیش کر کے اعتراض کرنے والوں کو چیلنج کیا کہ ایک مثال بھی کسی جاٹ کیساتھ ناجائز اور خصوصی روایت برتنے کی ثابت کی جائے۔ تمام مخالف لاجواب ہوگئے، اور چودھری صاحب کے چیلنج کے سامنے ٹھہر نہ سکے۔

چودھری صاحب اپنے کردار اور اخلاق کی بلندی اور سادہ زندگی گزارنے کے لئے اپنے ہمعصر سیاست دانوں میں ایک نمایاں مقام رکھتے ہیں، عیش پسندی اور سرمایہ دارانہ ٹھاٹ اور شان سے مظاہروں سے وہ ہمیشہ دور رہے۔ عام طور پر سیاسی لیڈروں کی پرائیویٹ اور نجی زندگی جس درجہ "کرپشن" میں ڈوبی ہوئی تھیں،

چودھری صاحب کی نجی اور پرائیویٹ زندگی بھی اُنکی عوام کے درمیان گزرنے والی زندگی کیطرح صاف و ستھری رہی ہے۔

اُن کا بڑے سے بڑا ذاتی اور سیاسی مخالف بھی اس سلسلہ میں اُن پر اُنگلی نہیں اُٹھا سکا۔ چودھری صاحب کی سخت گیری اور بے لچک اُصول پرستی پر بھی اکثر اعتراض کیا جاتا ہے مگر معترض شاید یہ بھول جاتے ہیں کہ چودھری صاحب کی سخت گیری اور بے لچک اُصول پرستی اگر ہمیشہ غلط کار اور بے ایمان افراد کے لئے عذاب بن جاتی ہے تو ایماندار اور اچھے کیرکٹر کے لوگوں کے لئے اُن کا یہی مزاج رحمت بھی ثابت ہوتا ہے۔

الغرض خود اعتمادی، بے پناہ قوت فیصلہ، بے خوفی، اور ذاتی و سیاسی ایمانداری و نیز نظم و ضبط اور بے لاگ فیصلے کے اجزاء کو سمیٹ دیجئے تو انہیں کو چودھری چرن سنگھ کا نام دے دیجئے، اور اُنہیں بکھیر دیجئے تو یہ چودھری چرن سنگھ کے کردار کے بکھرے ہوئے گل بوٹے بن جائیں گے۔

آخر میں اتنا اور عرض کر دینا ضروری سمجھتا ہوں کہ جہاں تک مرکزی اور صوبائی جنتا حکومتوں کی مجموعی کارگزاریوں کا تعلق ہے، میں اس سے نہ صرف یہ کہ مطمئن نہیں ہوں، بلکہ بہت مایوس اور بددل بھی ہوں۔

لیکن میرے براہ راست جو معلومات چودھری صاحب سے متعلق ہیں ان کے پیش نظر میں بلا ہچکچاہٹ کے مذکورۂ بالا اظہار خیال کے لئے مسرّت محسوس کر رہا ہوں۔

●

ہزاروں سال نرگس اپنی بے نوری پہ روتی ہے
بڑی مشکل سے ہوتا ہے چمن میں دیدہ ور پیدا

اقبال

پرنٹیپ

لیتھو برقی پریس نئی سڑک کانپور

صوبوں میں اُردو کو دوسری سرکاری زبان تسلیم کئے جانے کا مطالبہ صحیح سمجھتا ہوں مجھے آج بھی اس سلسلہ میں چودھری صاحب سے نیک نیتی کے ساتھ اختلاف ہے، لیکن اسی کے ساتھ میں اپنے اس یقین کا اظہار بھی کردینا ضروری سمجھتا ہوں، کہ چودھری صاحب نہ تو اُردو کے مخالف ہیں اور نہ اُس کے دشمن جبکہ وہ اُردو کے ہزاروں نمائشی اور لفظی ہمدردوں اور اُردو کے لئے مگرمچھ کے آنسو بہانے والوں سے زیادہ حقیقی طور سے اُردو کیلئے اپنے نظریات کے دائرہ میں رہکر عملی ہمدردی رکھتے ہیں۔

چودھری صاحب کے کردار کا جو انتہائی روشن پہلو اُنہیں کسی ممتاز قومی رہنماؤں سے ممتاز و ممیز کرتا ہے وہ یہ ہے کہ وہ سفارشوں اور شخصی ملحوظات سے بالاتر ہو کر ہر فیصلہ وسیع تر قومی پس منظر میں کرتے ہیں اور کسی بڑی سے بڑی سفارش سے متاثر نہیں ہوتے۔

چودھری صاحب کی پوری سیاسی زندگی اور اُن کے کردار کا یہ پہلو بہت نمایاں ہے، گویا ظاہر و باطن کے سنگم کا دوسرا نام چودھری چرن سنگھ ہے جسے دیکھ کر پڑھا جاسکتا اور پڑھ کر بآسانی سمجھا جاسکتا ہے۔

چودھری صاحب نے وزیر اعلیٰ کے بطور کئی بار صوبہ کو اپنی قیادت کا شرف عطا کیا۔ سمیکت ودھائک دل کی پہلی حکومت میں جب اُنہوں نے اپنی کابینہ کی تشکیل کی تو پہلی بار صوبہ میں شخصی استعداد، ذاتی صلاحیت، ملک کی چاہت، جذبۂ ایثار اور عوام کے مسائل کی جانب جذبۂ خلوص کا پیمانہ مقرر ہوا۔ چودھری صاحب نے ذات، فرقہ نسل، رنگ اور طبقاتی عواقب کے ماضی کے سارے پیمانوں کو توڑ دیا اور جن لوگوں کو پہلی ایس۔ وی۔ ڈی حکومت کے تشکیل کے اجزاء ترکیبی کا نقشہ یاد ہوگا وہ جانتے ہونگے کہ چودھری صاحب نے ایسے کئی لوگوں کو وزارت میں شریک نہیں کیا، جو اُنکے ہم نشین کہلاتے تھے اور بعض ایسے لوگوں کو شریک کیا جن کی ان سے ماضی میں صرف دور کے سلام ہی کا تعلق تھا۔ اور ایسا صرف اسلئے ہوا کہ چودھری صاحب کے نزدیک قیادت کا معیار قومی نوعیت کا حامل تھا نہ کہ ذاتی تعلقات یا دیگر ملحوظات کا۔

قوت فیصلہ، چودھری صاحب کی زندگی کا ایک دوسرا نمایاں پہلو ہے، انصاف، معقولیت اور نظم وضبط کا جو معیار چودھری صاحب کے پیش نظر ہوتا ہے اُس پر وہ ہرگز صلح نہیں کرتے۔ اس سلسلہ میں محمود بٹ صاحب کی مثال پیش کیجاسکتی ہے۔ جب وہ الہ آباد میں شہری کارپوریشن کے ایڈمنسٹریٹر تھے تو دریائے گنگا کے کنارے ایک فرض منصبی کی تکمیل کے دوران اُنہیں پولیس کا سہارا لینا پڑا۔ اور انتہائی کشیدہ حالات میں اُنہوں نے اُن تشدد پسندوں کا مقابلہ طاقت سے کیا، جو غلط روش اختیار کئے ہوئے تھے۔ اسوقت محمود بٹ کے ہاتھوں بعض وہ لوگ بھی تشدد کا نشانہ بنے جنکی بہت زیادہ رسائی چودھری صاحب تک تھی۔

اس کا شدید ردّ عمل ہوا۔ اپوزیشن نے بٹ صاحب کیخلاف ایک طوفان برپا کردیا۔ اور فرض شناسی کی ایک روشن مثال کو سیاسی اسٹنٹ بنایا جانے لگا۔ وزارتی سطح پر زبردست دباؤ ڈالا گیا کہ بٹ صاحب کے خلاف کارروائی کیجائے مگر وزیر اعلیٰ کے بطور چرن سنگھ نے اس مطالبہ کو مسترد کردیا۔ اور جب چودھری صاحب کو معلوم ہوا کہ جناب محمود بٹ نے فرض کی ادائیگی کے دوران اپنی جان جوکھوں میں ڈالدی تھی تو یہ بات حیرت انگیز نہیں ہے کہ چودھری صاحب نے بٹ صاحب کا زبردست دفاع کیا۔ ازاں بعد وہ جناب محمود بٹ کو ریاستی ایڈمنسٹریشن میں لے آئے۔ کیونکہ ایک ماہر جوہری نے گوہر کو پہچان لیا تھا۔

اس سلسلہ میں ایک اور واقعہ کا بیان برمحل ہوگا۔ جو چودھری چرن سنگھ کے انصاف کے احساس اور انصاف کی فراہمی میں اُن کے کردار کی بلندی کی غمازی کرتا ہے۔

چودھری صاحب حکومت میں نہیں تھے تو بعض پولیس والوں نے ذاتی عناد کی بنا پر ایک مسلمان کی لائسنس کی بندوق ضبط کرلی۔ اس اندھیر گردی کی اطلاع چودھری صاحب کو بہم پہنچائی گئی۔ اُس وقت تو متاثرہ شخص کو انصاف نہیں ملا، مگر جوں ہی چودھری صاحب اقتدار میں آئے توں ہی نہ صرف اُنہوں نے ستم زدہ مسلمان کو انصاف فراہم کیا بلکہ خطاکاروں کیخلاف کارروائی کی۔

اس سلسلہ میں ایک دیگر مثال چودھری صاحب کے سیکولرزم میں گہرے یقین پر خاص طور سے دلالت کرتی ہے۔

سابق ایس وی ڈی حکومت نے جب دوبارہ اقتدار سنبھالا تو کچھ ایسے وزراء کیخلاف چودھری صاحب کے پاس شکایات تھیں جو اُن کے بہت قریب سمجھے جاتے ہیں اور اس امر کا گمان بھی نہیں کیا جاسکتا تھا کہ یہ وزراء دوسری بار ودھائک دل حکومت میں شامل نہ کئے جائیں گے۔ مگر چودھری صاحب کہ جنھوں نے اہنسا، دیانتداری، اور ڈسپلن کا فیضان گاندھی جی سے حاصل کیا تھا اور جنھیں ایک سچا اور بے بدل گاندھی وادی کہنا زیادہ موزوں ہوگا۔ ایسے تمام ہندو وزراء کو اپنی دوسری وزارت میں

(برنتپ)

عوامی جماعت کی تشکیل کی جسے بعد میں آل انڈیا بھارتی کرانتی دل کی شکل دیدی۔ ۱۹۶۹ء میں دَل کے قومی چیرمین منتخب ہوئے اور اب تک اس منصب پر فائز ہیں۔

اُتر پردیش کی حکومت میں پہلی بار ۱۹۴۶ء میں پارلیمانی سکریٹری کی حیثیت سے قدم رکھا اور وزیر اعلیٰ کے عہدۂ جلیلہ تک مختلف وزارتوں کو اپنی ذات سے شرف بخشا۔

فروری ۱۹۶۸ء میں چودھری صاحب کے زیر قیادت بھارتیہ کرانتی دل نے اُتر پردیش اسمبلی کے درمیانی مدت کے انتخابات میں حصہ لیا تو اپنی کمسنی اور نوعمری کے باوجود اس قدر شاندار کامیابی حاصل کی کہ مخالفین ہکا بکا رہ گئے۔ اس عظیم الشان کامیابی کا ایک ہی سبب تھا اور وہ تھا چودھری صاحب کا خلوص، بے داغ سیاسی کردار۔ اور بیباکانہ جذبۂ عمل۔ ان اوصاف نے نہ صرف پارٹی کے وابستگان کو ایک ترقی پسند، انسانیت دوست اور جمہوریت دوست و جمہوریت نواز راستہ اپنانے میں مدد دی۔ جبکہ متعلقہ حلقہ ہائے انتخاب کے رائے دہندگان کو بھی متاثر کیا اور انہوں نے دوسرے اُمیدواروں کے مقابلہ میں بھارتیہ کرانتی دل کے اُمیدواروں کا ساتھ دیا اور انہیں واضح اکثریت سے کامیاب بنایا۔

عدلیہ کی محفل سے لیکر مقننہ کی بزم تک (عدالت سے اسمبلی تک) وکالت اور وزارت کی مصروف زندگی گزارنے والے چودھری چرن سنگھ جہاں قول کے پکے ہیں وہیں قلم کے بھی دھنی ہیں۔ کم از کم اپنے محبوب موضوع "زرعی معیشت" اور ہندوستانی دھرتی کے سچے لال کسان کی فلاح و بہبود سے متعلق مسائل پر انہوں نے انگریزی زبان میں تین ایسی کتابیں تخلیق کی ہیں جو اس زبان کے کسی بھی ہندوستانی قلم کار سے لوہا منوا لینے کیلئے کافی ہیں۔ یہ کتابیں "خاتمۂ زمینداری" کے نتیجہ میں پیدا شدہ مسائل کے حل، نیز ہندوستان کی غریبی و پسماندگی اور اُس کے علاج سے متعلق ہیں۔ نہ صرف موضوعات اچھوتے ہیں بلکہ انداز نگارش بھی منجھا ہوا اور پختہ کارانہ ہے۔ مسائل کا پوری طرح تجزیہ کیا گیا اور حل ایسے پیش کئے گئے ہیں جو بآسانی عمل میں لائے جا سکتے ہیں۔

چودھری چرن سنگھ نے ایمرجنسی کے وحشیانہ دور میں کانگریسی حکومت کے مظالم اور زیادتیوں کو انتہائی صبر اور بہادری کیساتھ برداشت کیا۔ جیل میں ان کے حوصلے بہت سے دوسرے لیڈروں کے مقابلہ میں زیادہ بلند تھے۔ لوک سبھا کے انتخابات کے موقع پر چودھری چرن سنگھ نے پورے ملک کا جس برق رفتاری سے دورہ کیا اور ایک ایک حلقۂ انتخاب میں کانگریسی مظالم کو جس مؤثر اور پُرجوش انداز میں بیان کیا اُس نے الیکشنی مہم کا پانسہ جنتا پارٹی کے حق میں کر دیا۔ بلاشبہ لوک سبھا کے انتخابات میں کانگریس کی شکست اور لوک سبھا کی عظیم کامیابی میں چودھری صاحب کی مساعی کا غیر معمولی اور فیصلہ کُن دخل تھا۔

آج چودھری صاحب ہندوستان کے وزیر داخلہ کی حیثیت سے خدمات انجام دے رہے ہیں۔ چودھری صاحب کے بیانوں کو جو لوگ اُردو کے خلاف سمجھ کر غلط فہمی میں مبتلا ہیں۔ حقیقت یہ ہے کہ چودھری صاحب اُردو کے اُتنے ہی ہمدرد ہیں جتنا کوئی حقیقت پسند عملی انسان ہمدرد ہو سکتا ہے، اس کے ثبوت کیلئے اُتر پردیش کا "اُردو گزٹ" آج بھی موجود ہے جو صرف چودھری صاحب کی تنہا اور خصوصی اُردو نوازی کے نتیجہ میں شائع ہونا شروع ہوا۔

چودھری صاحب کی خصوصیت یہ ہے کہ وہ جو کچھ کہتے ہیں اور جسے صحیح سمجھتے ہیں۔ اُس کو عملی جامہ پہنانے کی بھرپور کوشش کرتے ہیں۔ وہ ایک حقیقت پسند عملی انسان ہیں۔ محض ردِ لوث محفل اور دوسروں کو خوش کرنے کے لئے وہ کوئی ایسی بات، وعدہ یا اعلان نہیں کرتے، جس پر عمل کرنا اُن کے ضمیر کے خلاف ہو، یہی وجہ ہے کہ چودھری صاحب اُردو سے متعلق اپنی رائے اور صوابدید کے مطابق حقیقی اور عملی ہمدردی تو کرتے ہیں لیکن یہ اُن کی فطرت اور مزاج کے خلاف ہے کہ وہ اُردو کو ملک کی دوسری سرکاری زبان یا علاقائی زبان تسلیم کر لیں۔ یا اس کے متعلق کوئی ایسا اعلان کر دیں جس کو وہ عمل میں لانے کا ارادہ نہ رکھتے ہوں اور جو اُن کے بنیادی نظریہ کے خلاف ہو۔

گزشتہ تیس برسوں سے کانگریس کے بڑے لیڈر اور صف اول کے دوسرے قومی رہنما اُردو کے قصیدے پڑھتے رہے ہیں۔ لیکن عملی دنیا میں وہ "اُردو گزٹ" کے اجراء جیسا کوئی ایک کارنامہ بھی اُردو کے لئے انجام نہ دے سکے۔ البتہ خوش فہمیوں اور وعدوں کے پُرفریب جال میں محبان اُردو کو ضرور مبتلا کرتے رہے ہیں۔

اُردو سے متعلق چودھری صاحب کے بعض نظریات اور خیالات سے مجھے اختلاف ہے۔ میں اُتر پردیش، دہلی، آندھرا، پنجاب اور ملک کے چند دوسرے

پرنتپ

چودھری چرن سنگھ: میری نظر میں!

□ محمد اسحٰق علمیؔ: ایڈیٹر سیاست جدید کانپور

چودھری صاحب ۲۳ر دسمبر ۱۹۰۲ء کو میرٹھ ضلع کے ایک گاؤں میں پیدا ہوئے۔ ان کے والد کا نام چودھری امیر سنگھ تھا۔

انہوں نے ایک کسان گھرانے میں جنم لیا۔ یہ کسان لڑکا کسانوں ہی میں پلا بڑھا۔ کھیتوں اور کھلیانوں میں کھیلا کودا، ہل بیل سے پیار کیا۔ اور انہیں پُرخلوص خدمت کا عزم لے کر پڑھنے لکھنے سے دلچسپی لی تو بڑی بڑی ڈگریاں حاصل کرنے کو کھیل کو دتصور کیا۔ اور جب ملک و معاشرہ کی خدمت کے قابل ہوا تو اپنی ساری قوت فکر اور صلاحیت کار کو اسی سماج کی فلاح و بہبود کیلئے وقف کر دیا جسکو اوپر اُٹھانے اور اُسکا صحیح مقام و مرتبہ دلانے کیلئے اسنے پہلے پہل تختی کو بوسہ دیا تھا اور قلم کو آنکھوں سے لگایا تھا۔

ابتدائی تعلیم گھر پر حاصل کرنے کے بعد اسکول میں داخل کئے گئے۔ اپنی فطری ذہانت ہوشمندی اور ذوق و شوق سے کام لے کر تیزی کیساتھ آگے بڑھنا شروع کیا۔ بی ایس سی ایم اے، اور ایل ایل بی کے امتحانات میں کامیابی حاصل کی۔ شروع میں کچھ دنوں تک وکالت کی مگر ملک و معاشرہ کی خدمت کے جذبہ سے مجبور ہو کر اس پیشہ کو خیر باد کہا اور عملی سیاست کے میدان میں کود پڑے۔ ۱۹۱۹ء میں نمک ستیہ گرہ کے سلسلہ میں گرفتار کئے گئے اور چھ مہینے کے لئے جیل بھیجدیے گئے۔ یہیں سے قید و بند کی زندگی کا آغاز ہوا

برنتپ

جو اُسوقت تک جاری رہی جب تک کہ ملک کو غلامی اور غیر ملکی حکمرانی کے شکنجے سے نجات نہ دلائی۔

دوسری بار ۱۹۴۰ء کی ابتدا میں گرفتار کئے گئے، مگر عدالت سے بری کر دیے گئے۔ نومبر ۱۹۴۰ء میں پھر حراست میں لئے گئے اور ایک سال کیلئے جیل کے حوالے کر دیے گئے۔ اگست ۱۹۴۲ء کی عظیم اور ملک گیر تحریک میں چوتھی بار گرفتار کیے گئے تو نومبر ۱۹۴۳ء میں چھوڑے گئے۔ ۱۹۲۹ء سے ۱۹۳۹ء تک غازی آباد شہر کانگریس کمیٹی کی عام ممبری سے لیکر میرٹھ ضلع کانگریس کمیٹی کے نائب صدر تک مختلف عہدوں پر مامور رہے۔ جہاں بھی رہے اپنی ہمت، اولوالعزمی، صاف گوئی، بیباکی اور کردار کی پختگی کیوجہ سے بلند و بالا رہے۔

۱۹۳۷ء میں چھپرولی کے حلقہ انتخاب سے اسمبلی کی رکنیت حاصل کی تو آج تک اس حلقہ نے چودھری صاحب کا دامن نہ چھوڑا۔ اور نہ چودھری صاحب نے وہاں کسی کو قدم جمانے کا موقع دیا۔ اسمبلی کے ممبر ہونے کے بعد صوبائی کانگریس پارلیمانی پارٹی اور الکشن کمیٹی کے بھی ممبر ہو گئے۔ اور اُسوقت تک رہے جبتک ۱۹۶۷ء میں خود ہی کانگریس کو خیر باد نہ کہہ دیا۔

اپریل ۱۹۶۷ء میں کانگریس سے علٰحدگی کے بعد جن کانگرس کے نام سے ایک نئی

श्रीमती गायत्री देवी के साथ चौधरी साहब की सबसे छोटी बेटी शारदा, उसके पति एवं बच्चे।

चौधरी चरण सिंह प्रधान सम्पादिका के साथ

समाचारों में खोये दम्पति ।

दिसम्बर, १९४८ में मेरठ में आयोजित अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष, चौधरी चरण सिंह राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन तथा अन्य साहित्यकारों के साथ।

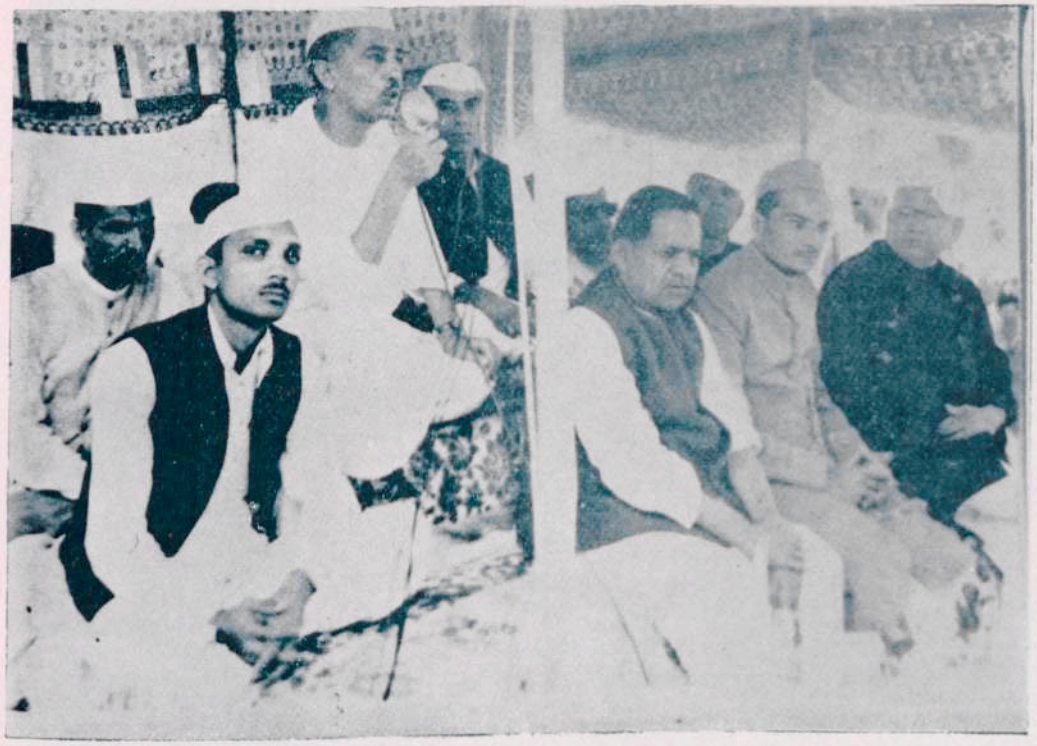

७ नवम्बर, १९५३ को नगर पालिका पिलखुआ का उद्घाटन करते हुए कृषि-मंत्री चौधरी चरण सिंह अपने अभिन्न पत्रकार मित्र विशम्भर सहाय प्रेमी तथा अन्य मित्रों के साथ।

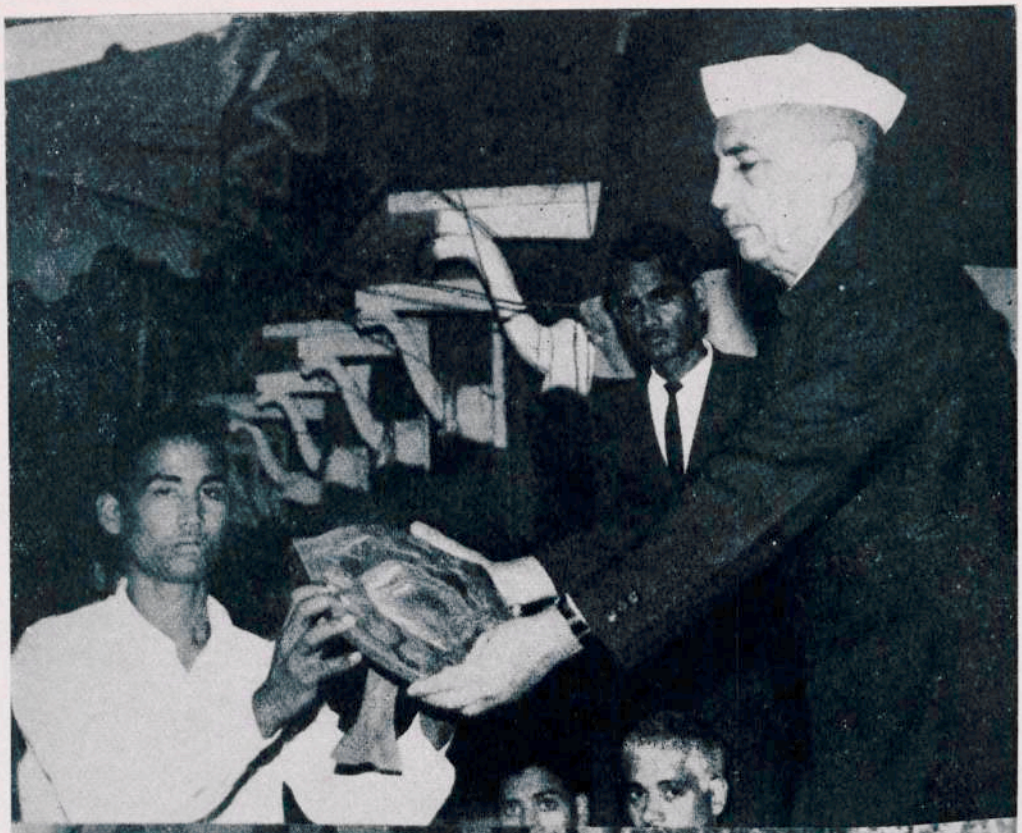

खैराबाद
लाल प्रसाद इन्टर कालेज के स्थापना दिवस पर पुरस्कार वितरण करते हुए मुख्य मंत्री चौधरी चरण सिंह ।
८-१२-६७

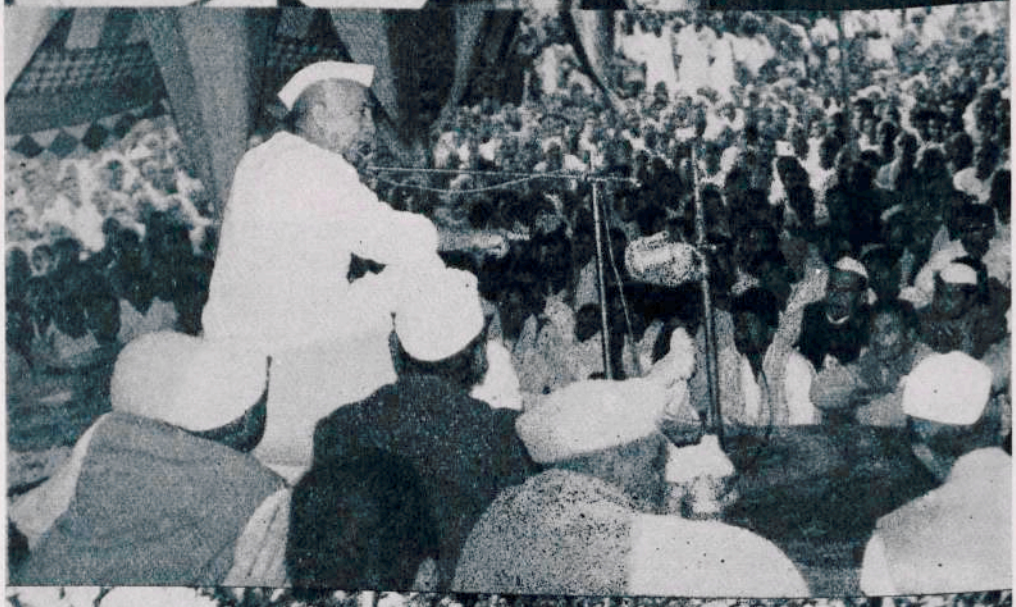

अहिरौली
ग्राम में कृषक–सम्मेलन में भाषण देते हुए मुख्य-मंत्री चौधरी चरण सिंह ।
२३-१२-६७

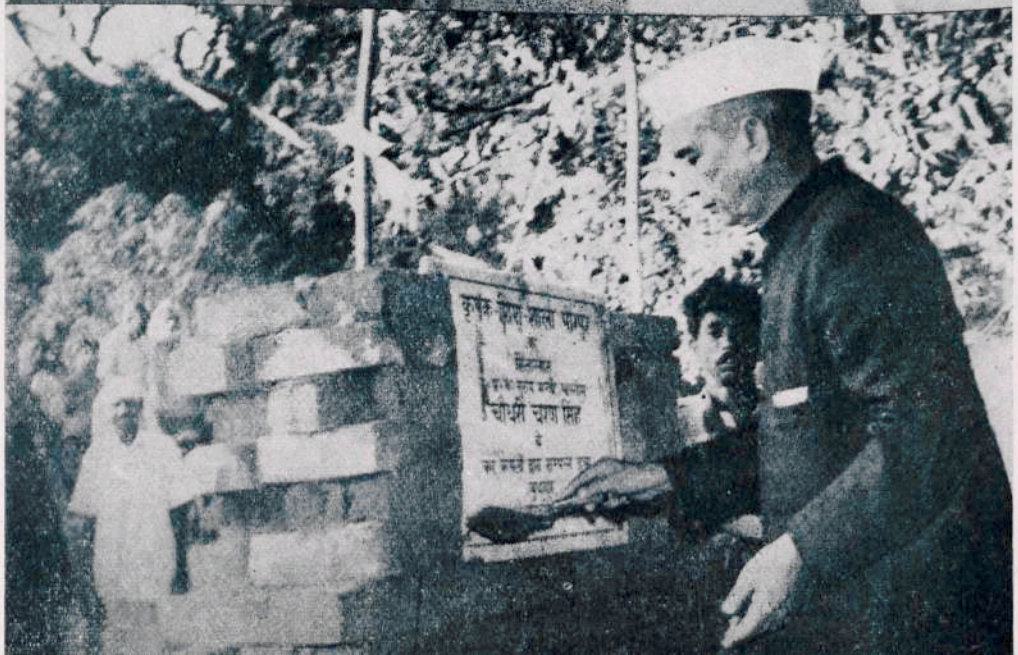

बाराबंकी
पीरपुर में कृषक-शिशु-शाला का शिलान्यास करते हुए मुख्य-मंत्री चौधरी चरण सिंह ।
२२-२-६८

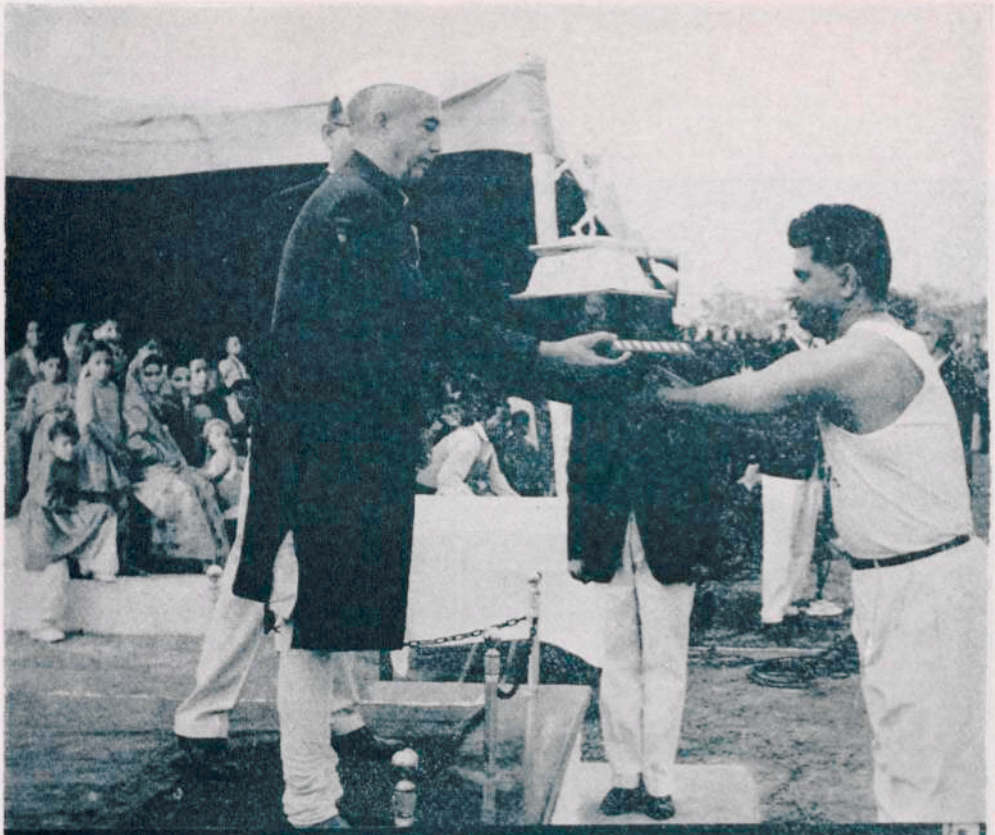

सीतापुर

पारितोषिक वितरण करते हुए चौधरी चरण सिंह

१९-११-६९

लखनऊ

समाज कल्याण बोर्ड के वार्षिक अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए। चौधरी चरण सिंह।

२८-३-७०

जर्मन दूतावास के काउन्सल जनरल श्री रैन्थ से भेंट-वार्ता करते हुए मुख्य-मंत्री चौधरी चरण सिंह।

२४-६-७०

मुख्य मंत्री उत्तर प्रदेश के पद की शपथ लेते हुए चौधरी चरण सिंह

१७-२-७०

मुख्य मंत्री उत्तर प्रदेश के पद से पत्रकरों को सम्बोधित करते हुए चौधरी चरण सिंह

१७-८-७०

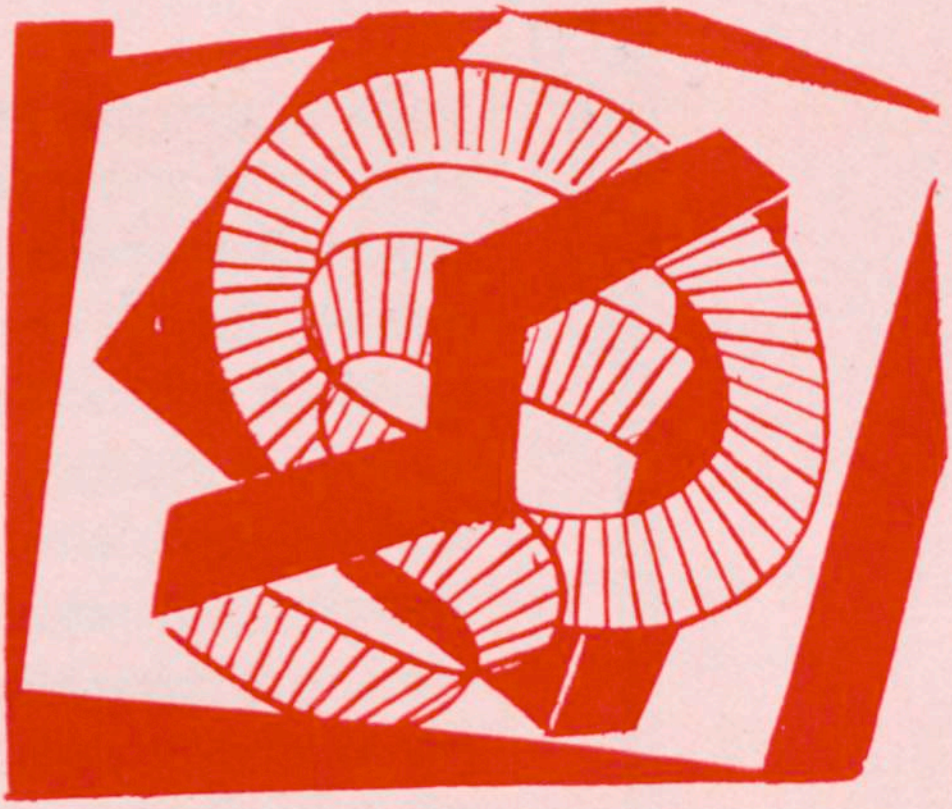

वाणी

परंतप : २६५

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु
भूमौ यानि नगेषु गिरिषु ।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि
ममैतानि शिवानि सन्तु ॥
सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी
चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो
भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥
पुण्यं पूर्वाफल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा
शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा
ज्येष्ठा सूनृतमरिष्ट मूलम् ॥
अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा
ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव
श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतो सुपुष्टिम् ॥
आ मे महच्छतभिषग् चरीय
आ मे दुया पोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म
आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥